Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2350-0611**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – V)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - *A Referred Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao,** Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

ଔ

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh,** Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari,** Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain,** Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas,** Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Research Highlights"

➲	ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया का भौगोलिक विश्लेषण ***डॉ. अभिषेक कुमार सिंह***	01-04
➲	बाल श्रम उत्पत्ति के कारण और उपाय : एक अध्ययन ***शैल कुमारी***	05-08
➲	भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में खगड़िया जिले के सुरेन्द्रनाथ शास्त्री की भूमिका ***राहुल कुमार***	09-13
➲	उत्तररामचरिते वर्णविन्यासवक्रताया वैचित्र्यम् ***डॉ. प्रियव्रत वेहेरा***	14-17
➲	युधिष्ठिरविजयमहाकाव्यस्य रसविमर्शः ***Kalpana Nayak***	18-23
➲	निरालाः राम की शक्ति–पूजा में आत्मसंघर्ष का विश्लेषण ***डॉ. संगीता कुमारी***	24-28
➲	स्वामी रामानन्दाचार्य सम्मत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त ***अनुज कुमार मिश्रा***	29-33
➲	हिन्दी फिल्म संगीत निर्देशक सलिल चौधरी 'सुरों का मनमोहक चितेरा' ***अमित कुमार सूर्यवंशी***	34-37
➲	लोककथा और लोकगाथा में अंतर संबंध ***नम्रता अलेन्द्र*** ***डॉ. दीपशिखा पटेल***	38-40
➲	चिकित्सा पद्धति की सामाजिक–ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ***डॉ. धीरेन्द्र कुमार गुप्ता***	41-45
➲	भारतीय लघुचित्रकला मे स्त्री स्वरूप : सौन्दर्य व भावाभिव्यक्ति का कलात्मक निरूपण ***प्रियांशा सोनी*** ***डॉ. अनीता कनौजिया***	46-50
➲	स्वर शिल्पी वाग्गेयकार : 'गुरुरंग' पं. भीमसेन शर्मा ***भरत बिदुआ***	51-55
➲	भारतीय ज्ञान परंपरा में कला, संगीत, संस्कृति एवं लोकपरम्पराएँ ***शुभम् दुबे***	56-60
➲	अभिषेक –प्रतिमानाटकयोः भासदृष्ट्या समीक्षणम् ***Sandhya Mohanta***	61-69
➲	विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों में योगासन एवं प्राणायाम का मनोवैज्ञानिक कल्याण पर प्रभाव ***अभिषेक कुमार सिंह*** ***डॉ. ओमदेव सिंह गौतम***	70-75

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया का भौगोलिक विश्लेषण

डॉ. अभिषेक कुमार सिंह*

सारांश (Abstract)

गरीबी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की प्रमुख सामाजिक-आर्थिक समस्याओं में से एक है। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार द्वारा ग्रामीण गरीबी को कम करने हेतु अनेक विकास कार्यक्रम संचालित किए गए हैं, जिनमें महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM), प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण), दीनदयाल अंत्योदय योजना तथा विभिन्न स्वरोजगार योजनाएँ प्रमुख हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया का भौगोलिक विश्लेषण करना है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन योजनाओं ने रोजगार सृजन, आय वृद्धि, सामाजिक सुरक्षा तथा आधारभूत सुविधाओं के विस्तार के माध्यम से गरीबी कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालांकि विभिन्न क्षेत्रों में इन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता में भौगोलिक असमानताएँ भी पाई जाती हैं।

मुख्य शब्द (Keywords): गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण विकास, मनरेगा, आजीविका मिशन, ग्रामीण रोजगार, भौगोलिक विश्लेषण।

1. प्रस्तावना

भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जहाँ गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ व्यापक रूप से विद्यमान हैं। ग्रामीण गरीबी केवल आय की कमी नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पोषण तथा सामाजिक अवसरों की कमी से भी जुड़ी हुई है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण गरीबों के जीवन स्तर में सुधार लाना तथा उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना है। इन कार्यक्रमों के प्रभावों का भौगोलिक अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि विभिन्न क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया किस प्रकार संचालित हो रही है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

1. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की प्रकृति एवं उद्देश्यों का अध्ययन करना।
2. गरीबी उन्मूलन में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. गरीबी उन्मूलन की क्षेत्रीय असमानताओं का भौगोलिक अध्ययन करना।
4. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

3. शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

प्राथमिक स्रोत

- क्षेत्रीय सर्वेक्षण
- साक्षात्कार
- प्रश्नावली

द्वितीयक स्रोत

- जनगणना रिपोर्ट

* भूतपूर्व शोध छात्र, भूगोल विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.

- नीति आयोग की रिपोर्ट
- ग्रामीण विकास मंत्रालय की रिपोर्ट
- शोध पत्र एवं पुस्तकें

4. ग्रामीण गरीबी की अवधारणा

गरीबी वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं–भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य–की पूर्ति करने में असमर्थ होता है।

ग्रामीण गरीबी के प्रमुख कारण

- बेरोजगारी
- कृषि पर अत्यधिक निर्भरता
- भूमि का असमान वितरण
- शिक्षा का अभाव
- कम उत्पादकता
- आधारभूत सुविधाओं की कमी

5. ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं गरीबी उन्मूलन

(क) महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)

मनरेगा ग्रामीण परिवारों को प्रतिवर्ष 100 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराने की गारंटी देता है।

प्रभाव

- रोजगार में वृद्धि
- मजदूरी आय में सुधार
- मौसमी बेरोजगारी में कमी
- पलायन में कमी

(ख) राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)

इस योजना का उद्देश्य गरीब परिवारों को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आजीविका के अवसर उपलब्ध कराना है।

प्रभाव

- स्वरोजगार को बढ़ावा
- महिलाओं की आय में वृद्धि
- वित्तीय समावेशन

(ग) प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण)

यह योजना गरीब परिवारों को पक्का आवास उपलब्ध कराती है।

प्रभाव

- आवासीय सुरक्षा
- जीवन स्तर में सुधार
- सामाजिक सम्मान में वृद्धि

(घ) प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना

ग्रामीण क्षेत्रों को सड़क संपर्क उपलब्ध कराना।

प्रभाव

- बाजार तक पहुँच

- रोजगार अवसरों में वृद्धि
- कृषि उत्पादों के विपणन में सुविधा

6. गरीबी उन्मूलन का भौगोलिक विश्लेषण

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रभाव सभी क्षेत्रों में समान नहीं पाया जाता।

विकसित क्षेत्रों में

- योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन
- रोजगार अवसर अधिक
- गरीबी दर कम

पिछड़े क्षेत्रों में

- संसाधनों की कमी
- कम जागरूकता
- योजनाओं का सीमित प्रभाव

क्षेत्रीय विषमताएँ

भारत के विभिन्न राज्यों एवं जिलों में गरीबी उन्मूलन की गति अलग-अलग है। सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में योजनाओं का प्रभाव अधिक देखा गया है।

7. गरीबी उन्मूलन पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभाव

आर्थिक प्रभाव

- आय में वृद्धि
- रोजगार के अवसरों का विस्तार
- स्वरोजगार को प्रोत्साहन

सामाजिक प्रभाव

- शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच
- सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि
- महिलाओं का सशक्तिकरण

अवसंरचनात्मक प्रभाव

- सड़क निर्माण
- आवास विकास
- स्वच्छता सुविधाओं का विस्तार

8. प्रमुख चुनौतियाँ

1. योजनाओं के क्रियान्वयन में अनियमितता।
2. भ्रष्टाचार एवं पारदर्शिता की कमी।
3. जागरूकता का अभाव।
4. क्षेत्रीय असमानताएँ।
5. तकनीकी एवं प्रशासनिक बाधाएँ।

9. सुझाव

1. योजनाओं की निगरानी को सुदृढ़ किया जाए।
2. गरीब परिवारों को योजनाओं की जानकारी दी जाए।
3. स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहन दिया जाए।

4. कौशल विकास कार्यक्रमों का विस्तार किया जाए।
5. डिजिटल तकनीकों का उपयोग बढ़ाया जाए।

10. निष्कर्ष

ग्रामीण विकास कार्यक्रम भारत में गरीबी उन्मूलन के महत्वपूर्ण साधन हैं। मनरेगा, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, प्रधानमंत्री आवास योजना तथा अन्य योजनाओं ने ग्रामीण गरीबों की आय, रोजगार, आवास एवं सामाजिक सुरक्षा में सुधार किया है। हालांकि क्षेत्रीय विषमताएँ तथा प्रशासनिक चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। प्रभावी क्रियान्वयन, जनभागीदारी एवं सतत निगरानी के माध्यम से इन योजनाओं की सफलता को और बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Desai, V. (2020). *Rural Development in India*. Mumbai: Himalaya Publishing House.
2. Datt, R., & Sundaram, K. P. M. (2021). *Indian Economy*. New Delhi: S. Chand Publishing.
3. Chambers, R. (1983). *Rural Development: Putting the Last First*. London: Longman.
4. Dreze, J., & Sen, A. (2013). *An Uncertain Glory: India and its Contradictions*. Princeton University Press.
5. Ministry of Rural Development. (2024). *Annual Report 2023-24*. Government of India, New Delhi.
6. National Rural Livelihoods Mission. (2023). *Operational Guidelines*. Ministry of Rural Development, Government of India.
7. Planning Commission. (2014). *Report of the Expert Group to Review the Methodology for Measurement of Poverty*. Government of India.
8. NITI Aayog. (2023). *National Multidimensional Poverty Index Report*. New Delhi.
9. शर्मा, आर. एन. (2019). *ग्रामीण विकास एवं नियोजन*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
10. सिंह, सी. (2018). *ग्रामीण समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन।
11. यादव, पी. (2021). *ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन*. नई दिल्ली: ज्ञान प्रकाशन।
12. Census of India. (2011). *Primary Census Abstract*. Government of India.
13. World Bank. (2022). *Poverty and Shared Prosperity Report*. Washington, D.C.: World Bank.
14. UNDP. (2023). *Human Development Report*. New York: United Nations Development Programme.

◀◀ ▶▶

बाल श्रम उत्पत्ति के कारण और उपाय : एक अध्ययन

शैल कुमारी*

शोध सार -

प्रस्तुत शोध पत्र "**बाल श्रम उत्पति के कारन और उपाय : एक अध्ययन**" है। बाल श्रम एक गंभीर सामाजिक समस्या है जो बच्चों के बचपन, शिक्षा और स्वास्थ्य को छीन लेती है। भारत में इसे रोकने के लिए कानून बने हैं, लेकिन गरीबी और जागरूकता की कमी के कारण यह अब भी व्यापक रूप से मौजूद है । इस अध्ययन में जन पाएंगे की बाल श्रम की उत्पति कैसे होती है और इसके निवारण के क्या उपाय है । ऐसे बच्चे जो बचपन में ही मजदूरी करने के लिए विवश हो जाते हैं,बाल श्रमिक' कहलाते हैं। निर्धनता, पारिवारिक परिस्थितियाँ, जनसंख्या वधि तथा माफ़िया गिरोह आदि बाल श्रम को बढ़ावा देते हैं। समाज से उपेक्षित एवं तिरस्कृत बच्चे भी अपना पेट भरने के लिए बाल श्रमिक बन जाते हैं। बाल श्रमिकों को घरों, दुकानों, होटलों, स्टेशनों तथा बस अड्डे आदि पर काम करते देखा जा सकता है। बाल श्रमिकों को अपमान, शारीरिक प्रताड़ना, यौन शोषण जैसी कष्टपूर्ण परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। यही नहीं, इन्हें अस्वस्थ परिस्थितियों में कम वेतन देकर अधिक समय तक काम करवाया जाता है। बचपन में बाल श्रमिक जूझतेजूझते नारकीय जीवन की - वैतरणी में बिलबिलाते रहते हैं। यद्यपि सरकार ने बाल श्रम जैसी सामाजिक बुराई को समाप्त करने के लिए कानून बनाया है, जिसमें जोखिम भरे कार्यों को करने के लिए 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर रखना दंडनीय अपराध है। गैरसरकारी संगठनों ने भी 'बचपन बचाओ' जैसे आंदोलन शुरू किए हैं। फिर भी काँच, कालीन, माचिस, आतिशबाजी और पटाखे, मिट्टी के बर्तन इत्यादि उद्योगों में इनकी काफ़ी संख्या अभी भी देखने को मिलती है। इस दिशा में हम सबको सोचना होगा और प्रयास करने होंगे क्योंकि अभी भी अपेक्षित परिणाम देखने को नहीं मिल पा रहे।

मुख्य शब्द - बाल श्रम, संगठन, जनसँख्या, निर्धनता, अपराध, शोषण आदि ।

विश्व की सबसे बड़ी जनसँख्या वाला देस भारत पारम्परिक दृष्टी से बहुत ही समृद्ध मणि जाती है परन्तु आजादी के बाद जिस गति सत जनसँख्या में वृद्धि हुई उस गति से खादान्न उत्पादन में वृद्धि नही हुई जिससे अनेक समस्याओं का जन्म हुआ जिसमे बालश्रमिक की समस्या सबसे व्यापक है । बाल श्रमिक बनने के भारत में जो कारण जान पड़ते हैं, वे अकथनीय व्यवहार से मिश्रित पाये जाते हैं। यदि हम इस समस्या पर गम्भीरता से विचार-विमर्श करते हैं तो इसके हमें निम्नलिखित कारण सामने आते हैं-

1. अत्यधिक गरीबी - बाल श्रमिक के लिए सबसे मुख्य कारन है-घोर गरीबी (Extreme poverty)। भारत के विभिन्न प्रान्तों में अधिकांश जनता घोर गरीबी की शिकार है। भारत के समस्त आदिवासी क्षेत्रों में आज भी आर्थिक विपन्नता है। वहाँ पर बालकों को छोटी उम्र में ही धन कमाने के लिये विवश कर दिया जाता है। जनजातियाँ घोर गरीबी में अपना जीवनयापन करती हैं। ये लोग अपने बालकों को बाल श्रमिक के रूप में कार्य पर भेज देते हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या एवं भूमि पर बढ़ते दबाव के कारण इनका जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। अत: विवश होकर ये लोग बालकों को पढ़ने की उम्र में काम पर लगा देते हैं।

2. सामाजिक कारण - सामान्य रूप में सामाजिक कारण भी बालकों को बाल श्रमिक के रूप में कार्य करने को प्रेरित करते हैं। आर्थिक तंगी के कारण अभिभावक इन बालकों को भर पेट खाना देने में असमर्थ होते हैं और शिक्षा प्रदान करने की भी उनकी सामर्थ्य नहीं होती। इसलिये समाज में दुर्व्यवहार न हो, इसके लिये धन कमाने

* शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

हेतु इन बालकों को बाल श्रमिक बनाकर छोटे-छोटे कारखानों एवं दुकानों पर कार्य करने के लिये भेज दिया जाता है।

3. प्राकृतिक कारण - ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि की खराब दशा और अनुपयोगी वातावरण धनाभाव का संकेत देती है। कभी-कभी भूमि की दुर्गम भौगोलिक दशाकृषकों की जीवन दशा को प्रभावित करती है। अत: वे धनाभाव के दबाव के कारण अपने बालकों को शहरों में ले जाकर बाल श्रमिक बना देते हैं।

4. जनसंख्या वृद्धि का दबाव - अधिकांशतः लोग अति पिछड़े क्षेत्रों से उन स्थानों के लिये पलायन करते हैं, जहाँ पर विकसित क्षेत्र होता है। लगभग शहरी क्षेत्रों के लिये लोग पलायन अधिक मात्रा में करते हैं। शहरी वातावरण में पहुँचकर रोजगार की दृष्टि से अभिभावक अपने बालकों को लघु उद्योगों और दुकानों तथा ढाबों पर बाल श्रमिक के रूप में कार्य करने के लिये विवश कर देते हैं। अतः परिवार के भरण-पोषण के लिये आय के स्रोत खोजने में बालकों को बाल श्रमिक बना दिया जाता है।

5. अशिक्षा - शिक्षा के केंद्र के आभाव में अधिकांशतः ग्रामीण अशिक्षित होते हैं। उन्हें शिक्षा के प्रति कोई लगाव नहीं होता। शैक्षिक वातावरण उन्हें प्रभावित नहीं करता है। अत: बालकों को शिक्षित करने के बजाय गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिये उनके माता-पिता उन्हें शहरी क्षेत्रों में ले जाकर बाल श्रमिक बनने को विवश कर देते हैं। इस कारण बालक दुकानों, ढाबों, कल-कारखानों, जूता फैक्ट्री तथा बीड़ी बनाने के कारखानों में काम करते पाये जाते हैं।

6. प्राकृतिक सम्पदा की कमी - आर्थिक स्थिति खराब होना और जनसंख्या वृद्धि के कारण दिनों-दिन प्राकृतिक सम्पदा कम होती जा रही है। उदाहरण के लिये, वन कटते जा रहे हैं। कोयला एवं अन्य खनिज पदार्थ सीमित मात्रा में होने के कारण उनकी कमी निरन्तर बनी रहती है। नदिओं का कटाव तेजी से हो रहा है । प्राकृतिक सम्पदामें कमी के कारण गाँवों में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। लोगों के समक्ष आय के स्रोत कम हो रहे हैं। अत: लोग रोजगार पाने की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं। रोजगार के पाने के लिये उन्हें अपने बालकों को बाल श्रमिक के रूप में कार्य पर लगा देते हैं।

बाल श्रम उत्पन्न होने के उपरोक्त कारणों के अलावे भी अनेक कारन हो सकते है जिसकी चर्चा यह नही की गई है । यदि उपरोक्त कारणों का समाधान किया जय तो इसमें कमी लाया जा सकता है ।

बाल श्रम रोकने के उपायों को निम्नलिखित रूप में चर्चा कर सकते है ।

1. **बढती जनसँख्या** - बढती जनसँख्या बाल श्रम के लिए सबसे बड़ा कारण है। जिस तेज गति से जनसँख्या बाधा है उस गति से खादान्न उत्पादन नही हुई है जिससे पेट भरने के लिए बाल श्रम का सहारा लेना पड़ा है । आज भी जंगलों के आस पास खादान्न की कमी रहती है जिससे वह के बच्चे शहरों में जाकर श्रम के जीवन निर्वाह करते है ।

2 .रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना - गरीब तथा बेरोजगार लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिये सरकार की ओर से उचित योजनाएँ चलायी जा सकती हैं, जो कि निम्नलिखित हैं-

(1) कृषि पर आधारित रोजगार योजनाएँ;जैसे-किसान समृद्धि योजना, चावल विकास योजना, राष्ट्रीय दलहन एवं तिलहन विकास योजना, भूमि संरक्षण कार्यक्रम, अन्नपूर्णा योजना और छोटे तालाब निर्माण योजना। (2) खाद्यान्न वितरण योजना। (3) अन्योदय अन्न योजना। (4) अन्नपूर्णा दाल-भात योजना।

3 . शिक्षा को निःशुल्क रूप में प्रदान करना - भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जहाँ पर गरीबी, भुखमरी एवं अशिक्षा का वातावरण है, उनमें शिक्षा को नि:शुल्क देने की सरकार की योजना क्रियान्विति होनी चाहिये। अत: सरकार को बालक और बालिकाओं को समान रूप से निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का अवसर प्रदान करना चाहिये। साथ ही शिक्षा के लिये समान अवसर प्रदान करने चाहिये।

4 **. प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम** - ऐसे प्रौढ़ जो किसी भाषा को समझ सकते हों, उन्हें पढ़ने, लिखने के अवसर प्रदान करने के लिये सरकार द्वारा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को बढ़ावा प्रदान करना चाहिये। सम्पूर्ण देश में साक्षरता मिशन त्वरित गति के आधार पर चलाया जाना चाहिये।

5 शिक्षा - शिक्षा द्वारा भावी पीढ़ी को जनसंख्या एवं उससे सम्बन्धित समस्याओं के प्रति सचेत करने एवं समस्याओं के समाधान में रुचि विकसित करने के लिये प्रेरित करना चाहिये, जिससे वे अपने जीवन मूल्यों को समझ सकें और आगे आने वाली पीढ़ी को शिक्षित कर उचित रोजगार पाने की दिशा में प्रयत्न कर सकें। यदि जनसंख्या का दबाव कम होगा तो आर्थिक तंगी परेशान नहीं करेगी। अत:जनसंख्या नियन्त्रण आवश्यक है।

अशिक्षा को दूर करके तथा स्वरोजगार के अवसर प्रदान करके हम अभिभावकों के अन्दर जागृति उत्पन्न कर सकते हैं और उन्हें पलायन की स्थिति से बचा कर उनके बच्चों को बाल श्रमिक बनने से रोक सकते हैं और बालकों को उचित एवं समान अवसर प्रदान कर शैक्षिक वातावरण उपलब्ध करा सकते हैं।

बाल श्रम एक ऐसी सामाजिक समस्या है जो न केवल बच्चों के जीवन को प्रभावित करती है बल्कि पूरे समाज और राष्ट्र की प्रगति में बाधा डालती है। जब कोई बच्चा अपने बचपन में शिक्षा, खेल और मानसिक विकास से वंचित होकर मजदूरी करने के लिए मजबूर होता है, तो यह केवल उसके व्यक्तिगत अधिकारों का हनन नहीं बल्कि समाज की सामूहिक असफलता भी है।

गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक असमानता बाल श्रम के प्रमुख कारण हैं। गरीब परिवारों के लिए बच्चों को काम पर भेजना जीविका का साधन बन जाता है। शिक्षा की कमी और जागरूकता का अभाव इस समस्या को और गहरा करते हैं। परिणामस्वरूप बच्चे कम उम्र में ही शारीरिक और मानसिक बोझ उठाने लगते हैं। यह बोझ उनके स्वास्थ्य को कमजोर करता है, उनकी सोचने-समझने की क्षमता को सीमित करता है और उन्हें भविष्य में बेहतर अवसरों से वंचित कर देता है।

बाल श्रम का सबसे बड़ा नुकसान यह है कि यह बच्चों को शिक्षा से दूर कर देता है। शिक्षा ही वह साधन है जो गरीबी और पिछड़ेपन से बाहर निकलने का रास्ता दिखाती है। जब बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, तो वे उसी गरीबी और मजदूरी के चक्र में फँस जाते हैं जिसमें उनके माता-पिता पहले से फँसे होते हैं। इस प्रकार बाल श्रम पीढ़ी दर पीढ़ी गरीबी और अशिक्षा को बनाए रखता है।

समाज और राष्ट्र के लिए भी बाल श्रम हानिकारक है। जब बच्चों को शिक्षा नहीं मिलती, तो भविष्य में कुशल और योग्य नागरिकों की कमी होती है। यह राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक प्रगति को रोकता है। एक देश तभी विकसित हो सकता है जब उसके नागरिक शिक्षित, स्वस्थ और आत्मनिर्भर हों। बाल श्रम इस विकास की नींव को कमजोर करता है।

इस समस्या का समाधान केवल कानून बनाने से नहीं होगा। यद्यपि भारत में बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम जैसे कानून मौजूद हैं, लेकिन इनका प्रभाव तभी होगा जब समाज में जागरूकता फैलाई जाए और गरीबी को कम करने के ठोस प्रयास किए जाएँ। सरकार को शिक्षा को अधिक सुलभ और गुणवत्तापूर्ण बनाना होगा ताकि हर बच्चा स्कूल जा सके। साथ ही, समाज को यह समझना होगा कि बच्चों का स्थान कारखानों या खेतों में नहीं बल्कि विद्यालयों और खेल के मैदानों में है।

निष्कर्षतः बाल श्रम एक ऐसी समस्या है जिसे समाप्त करना केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं बल्कि पूरे समाज का कर्तव्य है। हर नागरिक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई भी बच्चा मजदूरी करने के लिए मजबूर न हो। हमें बच्चों को उनका बचपन लौटाना होगा, उन्हें शिक्षा और सुरक्षित वातावरण देना होगा ताकि वे अपने सपनों को साकार कर सकें। जब हर बच्चा पढ़ेगा, खेलेगा और स्वस्थ जीवन जिएगा, तभी हमारा समाज और राष्ट्र वास्तव में प्रगति कर पाएगा और एक भारत श्रेष्ठ भारत की कल्पना को साकार कर पाएंगे ।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, आर. (2015). भारत में बाल श्रम की समस्या. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. गुप्ता, एस. (2012). *बाल श्रम और शिक्षा का अधिकार*. वाराणसी: भारती बुक्स.
3. मिश्रा, पी. (2018). बाल श्रम: सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण. लखनऊ: ज्ञान गंगा प्रकाशन.
4. वर्मा, डी. (2010). बाल श्रम उन्मूलन के प्रयास. पटना: लोकभारती प्रकाशन.
5. सिंह, के. (2016). भारतीय समाज में बाल श्रम. जयपुर: साहित्य सदन.
6. Basu, K. (1999). *Child labor: Cause, consequence, and cure*. Oxford University Press.
7. Edmonds, E. V. (2008). *Child labor and schooling responses to anticipated income in South Africa*. Journal of Development Economics, 81(2), 386–414.
8. Fyfe, A. (1989). *Child labor worldwide: A comparative study*. International Labour Organization.
9. Grootaert, C., & Kanbur, R. (1995). *Child labor: An economic perspective*. World Bank Publications.
10. Hindman, H. D. (2009). *The world of child labor: An historical and regional survey*. M.E. Sharpe.
11. Myers, W. E. (2001). *The right of children to protection from child labor*. UNICEF Innocenti Research Centre.

◂◂ ▸▸

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में खगड़िया जिले के सुरेन्द्रनाथ शास्त्री की भूमिका

राहुल कुमार*

सुरेन्द्रनाथ शास्त्री खगड़िया जिले के स्वतंत्रता सेनानी, सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। गाँधीजी को अपना आदर्श मानते थे। भागवत शास्त्री के सहयोग से स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाने लगे। 1926 ई. में खगड़िया के गोगरी राटन के मैदान में गाँधीजी के भाषण को सुनकर आन्दोलन के लिए प्रेरित हुए। अपने शिक्षा ग्रहण करने के समय से ही आन्दोलन में भाग ले रहे थे। इन्होंने सर्वप्रथम नमक सत्याग्रह एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया। इन आन्दोलन में सक्रिय रहने के कारण जेल भी जाना पड़ा। खगड़िया में शराब का विरोध करना, नमक कानून तोड़ने एवं विदेशी वस्त्र बहिष्कार में इन्हें अभियुक्त बनाकर जेल की सजा भी मिली। काशी विद्यापीठ बनारस से एम.ए. (हिन्दी) की डिग्री हासिल करने के बाद काशी विद्यापीठ के कुमार विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्य किये। हिन्दी विद्यापीठ देवघर, में रजिस्ट्रार के पद को 1940 ई. से 1942 ई. तक पद को सुशोभित किये। बंगाल में भीषण अकाल एवं बाढ़ के कारण बंगाल में 'बंगाल रिलीफ कमिटी' के द्वारा संचालित शिशु सदनों की देख-रेख के लिए 'शिक्षा निरीक्षक' के पद पर भी 1944 ई. से 1946 ई. तक कार्य किये। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1952 से 1977 ई. तक वैसा के राष्ट्रीय विद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किये। इस प्रकार आन्दोलन में सुरेन्द्रनाथ शास्त्री के द्वारा खगड़िया के स्थानीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस शोध आलेख में सुरेन्द्रनाथ शास्त्री से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने का मेरा विनम्र प्रयास होगा। भारत सरकार का योजना भी है कि "अनशन हीरो" की पहचान करना। इस कड़ी में मेरा शोध आलेख बहुत अच्छा कारगर सिद्ध होगा।

आधार शब्द : आन्दोलन, स्वतंत्रता, सक्रिय भूमिका, विद्यापीठ, शिक्षा।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्ती भूमिका निभाने वाले अनेको स्वतंत्रता सेनानी हुए जिनमें प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में हमें इतिहास में बहुत सारी जानकारियाँ मिलती है। परंतु अभी भी बहुत ऐसे स्वतंत्रता सेनानी है जिनकी राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका रही, जो राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर महत्वपूर्ण कार्य किये परंतु इतिहास के पन्ने में अभी भी उनका या तो उचित स्थान नहीं मिला है या बिल्कुल इतिहास के पन्ने से गौण है। ऐसे ही स्वतंत्रता सेनानियों में एक नाम से सुरेंद्रनाथ शास्त्री का आता है जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर तो महत्वपूर्ण कार्य किया ही उनके साथ-साथ स्थानीय स्तर पर खगड़िया जिले में स्वतंत्रता के लिए भरपूर संघर्ष किए हैं परंतु उनको अभी भी इतिहास में उचित स्थान नहीं मिला है मैं अपने इस आलेख में इस कर्मियों को दूर करने का विनम्र प्रयास करूंगा

सुरेंद्रनाथ शास्त्री प्रतिभा के धनी व्यक्ति स्वतंत्रता सेनानी एवं सामाजिक कार्यकर्ता थे उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई। उनके आदर्श महात्मा गांधी थे।[1]

जन्म और प्रारंभिक जीवन

सुरेंद्रनाथ शास्त्री का जन्म बिहार के खगड़िया जिले के परबत्ता प्रखंड अंतर्गत बैसा गांव के एक संपन्न किसान प्रेमलाल मंडल के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में हुआ। इनका जन्म 6 अगस्त 1915 ई को महेशखूंट में नाना के घर हुआ। उनके माता का नाम सौभाग्यवती देवी जो स्वभाव से ही बड़ी निर्भीक एवं धार्मिक प्रवृत्ति की थी। उस समय परिवार में एकलौते लड़का होने के कारण नाना और दादा दोनों का बहुत प्यार मिला। सही मायने में

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर

उनका पालन पोषण चाचा जियालाल मंडल ने किया था। चाचा स्वभाव से ही बहुत भद्र सज्जन, मधुर भाषी, शांति प्रिय, परोपकारी एवं उदार थे। चाचा जियालाल मंडल बनेली राज में तहसीलदार थे।[2]

शिक्षा

सुरेंद्रनाथ शास्त्री की प्रारंभिक शिक्षा 1921 ई० में उर्दू मकतब से आरंभ हुई। उस समय मड़ैया के प्रतिष्ठित व्यक्ति मौलवी मोवीन उद्दीन के मकतब पर उर्दू के मौलवी रहते थे और उर्दू का भाषा (फारसी लिपि में) पढ़ाया करते थे। कुछ दिनों के बाद बैसा के एक अध्यापक तुलसीदास से देवनागरी लिपि सीखी और उर्दू मकतब छोड़कर हिंदी भाषा में प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश लिया। 1922 ई० से विद्यालय बैसा में शिक्षा प्राप्त करना शुरू किया। सन 1927 ईस्वी में प्राथमिक विद्यालय बैसा से प्राइमरी में उत्तीर्ण होकर राष्ट्रीय विद्यालय गोगरी में प्रवेश लिया। उस समय मणिगाछी दरभंगा के मुक्तिनाथ विद्यालंकर इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक तथा सुरेश चंद्र मिश्र, गजाधर प्रसाद श्रीवास्तव, चंद्र मोहन कांत, जागेश्वर प्रसाद और शिवधारी सिंह अध्यापक थे। 1930 ई० में राष्ट्रीय विद्यालय खगड़िया में शिक्षा ग्रहण किया। 1934 ई० से 1938 ई० तक काशी विद्यापीठ बनारस से एम० ए० हिंदी की पढ़ाई की।[3]

स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका

1926 ई० के दिसंबर में महात्मा गांधी देश के विभिन्न हिस्सों के भ्रमण के क्रम में गोगरी आए। राटन के मैदान में संध्या समय उन्होंने विशाल जन सभा को संबोधित किया। सुरेंद्रनाथ शास्त्री उनके भाषण को सुनने के लिए बैसा से राष्ट्रीय विद्यालय गोगरी आए। उस दिन गांधी गोगरी आश्रम में ही रात्रि विश्राम किये और प्रातः काल गोगरी से नाव में बैठ कर मुंगेर गए।[4]

1929 ई० में सुरेंद्रनाथ शास्त्री की मुलाकात राष्ट्रीय विद्यालय गोगरी में भागवत शास्त्री से हुआ। भागवत शास्त्री उस समय काशी विद्यापीठ बनारस के छात्र थे। दशहरा और गर्मी में महाविद्यालय में लंबा अवकाश होता था इस अवकाश में वह राष्ट्रीय विद्यालय गोगरी में प्राथमिक कक्षाओं में छात्रों को पढ़ाते थे। भागवत शास्त्री गणित के अच्छे ज्ञाता एवं फुटबॉल के खिलाड़ी थे जहाँ इन दोनों की मुलाकात हुई।[5]

सन् 1930 में गांधी जी सविनय अवज्ञा आंदोलन का आह्वान किया। नमक कानून तोड़ने के लिए 78 सत्याग्रहियों को संगठित कर स्वयं गुजरात के साबरमती आश्रम से 12 मार्च, 1930 को सवेरे 6:30 बजे दांडी के लिए रवाना हुए।[6] दांडी में गांधी जी ने नमक बनाकर नमक कानून को तोड़ा । गांधी जी के आह्वान पर पूरे भारत के विभिन्न शहरों में नमक बनाकर नमक कानून का उल्लंघन किया जाने लगा। मुंगेर जिला कांग्रेस कमेटी ने 20 अप्रैल को नमक कानून भंग करने का निश्चय किया। इसके लिए दो स्थानों का चयन किया गया - सदर सबडिवीजन में चौकी एवं बेगूसराय सब डिवीजन में गढ़पुरा ग्राम। 17 अप्रैल 1930 को गोगरी में नमक कानून का उल्लंघन कर 4:00 बजे संध्या में गोगरी के 11 सत्याग्रहियों के साथ उन्होंने गढ़पुरा के लिए प्रस्थान किया। बिहार में डॉ० श्रीकृष्ण सिंह ने मुंगेर से गंगा नदी पार कर लगभग 100 किलोमीटर की लंबी दुरूह व कष्टप्रद पदयात्रा यात्रा कर गढ़पुरा के दुर्गा गाछी में अपने सहयोगियों के साथ अंग्रेजों के काले नमक कानून को तोड़ा।[7] बेगूसराय के एक बंगाली वकील सतीश चंद्र बोस ने सुरेंद्र शास्त्री के ही गांव बैसा में नमक बनाकर नमक कानून को तोड़ा। जिसके कारण उसे गिरफ्तार का जेल भेज दिया गया, जहां वे लकवा से ग्रसित हो गए। सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रारंभ होते ही सभी राष्ट्रीय विद्यालय और महाविद्यालय को बंद कर दिया गया। राष्ट्रीय विद्यालय और महाविद्यालय के छात्रों ने विद्यालय बंद होने के कारण आंदोलन में शामिल हो गए। खगड़िया में विलायती वस्त्र का बहिष्कार एवं कपड़े की दुकानों पर धरना देना, मध् निषेध के लिए तारी और शराब की दुकानों पर धरना देने की योजना अपनाई गई। मध् निषेध के लिए जमालपुर बाजार के मुश्कीपुर इमली गाछी के पास में धरना देने के कारण सुरेंद्रनाथ शास्त्री, सुरेश चंद्र मिश्र, बल्लभ कुमार, बामन दास और रमेश मिश्रा को गिरफ्तार कर मुंगेर जेल भेज दिया गया। इन सबों को 6 माह की सजा हुई और मुंगेर से

भागलपुर जेल स्थानांतरित कर दिया गया। वहां से पटना कैंप जेल में स्थानांतरण के बाद सरकार की ओर से कम उम्र के बंदियों को रिहा करने के क्रम में सुरेंद्रनाथ शास्त्री को भी जेल से छोड़ दिया गया।[8] वे जेल से छूटने के बाद पुनः विदेशी वस्त्र बहिष्कार के लिए जमालपुर बाजार में धरना देने के सिलसिले में विनय कुमार, सोंडीहा के मथुरा प्रसाद तथा शाहिदपुर भागलपुर के नंदकिशोर सिंह साथ गिरफ्तार कर फिर मुंगेर जेल भेज दिया गया और वहां ढाई मास की सजा हुई।[8]

सन् 1932 में मुंगेर अस्पताल के महिला वार्ड और बैधनाथ बालिका उच्च विद्यालय उद्घाटन के लिए बिहार के तत्कालीन गवर्नर सर जॉन स्टीफेसन तथा लेडी स्टीफेसन द्वारा उद्घाटन का कार्यक्रम निश्चित हुआ था। सत्याग्रह आंदोलन के करण गवर्नर को काला झंडा दिखाने का कार्यक्रम बना। इस योजना को क्रियान्वित करने का भार सुरेंद्रनाथ शास्त्री, रमेश चंद्र मिश्र (कन्हैयाचक), बल्लभ कुमार (डुमरिया खुर्द), ब वामन दास (गोगरी बाजार) एवं राम बहादुर वर्मा (महेशखुटँ) को दिया गया। इन सभी ने स्टीफन वापस जाओ का नारा लगाते हुए आगे बढ़े कुछ ही दूर चले के बाद ही सभी को गिरफ्तार कर लिया गया। बलदेव पंडित (करुआ) के साथ रामदेव आर्य (मालपा) अपने जेब में काला झंडा लिए मुंगेर किला के गेट के पास खड़े थे। सर्किट हाउस से अस्पताल की ओर गवर्नर की गाड़ी के सामने काला झंडा दिखाया और वही पर उन्हें गिरफ्तार कर मुंगेर जेल भेज दिया गया। स्पेशल दंडाधिकारी, मुंगेर के इजलास में से० सी०आर०75/15 टी०आर० के तहत इन सबों को 5 माह की सजा हुई थी।[9]

पुनः स्वतंत्रता दिवस समारोह के अवसर पर सभा और जुलूस निकालने के अभियोग में दिनांक 26.01.1933 को सुरेंद्रनाथ शास्त्री, सुरेश चंद्र मिश्र, दशरथ झा, चंदन कुमार मिश्र, लखन लाल मिश्र एवं रमेश चंद्र मिश्र को जमालपुर बाजार में गिरफ्तारी हुई। जी० आर० 147/42/33 दिनांक 02.02.1933 में ठकुराई बी० डी० सिंह डिप्टी मजिस्ट्रेट मुंगेर के द्वारा सश्रम कारावास दंड से दंडित किया गया।[10]

सन् 1934 में मकर संक्रांति के दिन उत्तर बिहार में आए प्रलयकारी भूकंप के कारण हुई बर्बादी के बाद आंदोलन को रोक दिया गया। भूकंप पीड़ितों की सहायता के लिए बिहार के अग्रणी कांग्रेसी नेता राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में "भूकंप पीड़ित सहायता समिति" की स्थापना हुई। भागवत शास्त्री के साथ सुरेंद्रनाथ शास्त्री भी सहायता कार्य में जुट गए।[11]

सुरेंद्रनाथ शास्त्री 1939 ई० में काशी विद्यापीठ की "शास्त्री" परीक्षा में उत्तीर्णता के बाद विद्यापीठ के कुमार विद्यालय में अध्यापक के पद पर नियोजित हुए। इसी समय सुरेंद्रनाथ शास्त्री का विवाह भी हो गया। सन् 1939 में शादी के बाद भागवत शास्त्री ने "मजदूर संगठन" के कार्य में झरिया आने का सुझाव दिया। जिसके कारण कुमार विद्यालय छोड़कर झरिया आ गए एवं मजदूर संगठन के काम में लग गए।[12]

सन् 1940 में रामगढ़ बिहार में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का वार्षिक सम्मेलन होना निश्चित हुआ। रामगढ़ कोयला क्षेत्र का ही एक अंग था। कांग्रेस पदाधिकारियों ने छोटा नागपुर मजदूर संगठन के लोगों को सहयोग देने का सुझाव दिया। भागवत शास्त्री के साथ उनकी पत्नी श्रीमती कमला देवी, सुरेंद्रनाथ शास्त्री और उनकी पत्नी मनोरमा देवी, नंदकिशोर की पत्नी शकुंतला देवी, रामोदित साहू की पत्नी सुमित्रा देवी एवं बछवारा के दामोदर शर्मा की सुपुत्री सुमित्रा आदि महिलाओं स्वयंसेविकाओं संगनियों के साथ रामगढ़ सम्मेलन की सफलता के लिए तैयारी के काम में जुटे रहे। इन सम्मेलन का अध्यक्ष अबुल कलाम आजाद को निर्वाचित किया गया था। इन सम्मेलन में महात्मा गांधी, राजेंद्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल, राज गोपालाचारी, सीतारमैय्या, सरोजिनी नायडू आदि के साथ श्रीकृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह,डॉक्टर सैयद महमूद, शिवनंदन मंडल, जगलाल चौधरी, कृष्ण वल्लभ सहाय, नंद कुमार सिंह ,श्यामा प्रसाद सिंह आदि ने भाग लिया था।[13]

देवघर के कांग्रेसी नेता विनोदानंद झा भी रामगढ़ सम्मेलन में आए थे। वे हिंदी विद्यापीठ देवघर राष्ट्रभाषा प्रचार और परीक्षा के काम में कार्यरत थे। इस विद्यापीठ में रजिस्ट्रार के पद रिक्त था, विनोदानंद झा इस पद के लिए एक सुयोग्य व्यक्ति की तलाश में थे। भागलपुर के एक साथी वासुदेव झा शास्त्री ने सुरेंद्रनाथ शास्त्री को विनोदानंद झा से मिलवाया और उनके परामर्श से हिंदी विद्यापीठ देवघर के स्थापन्न रजिस्ट्रार के पद पर सुरेंद्रनाथ शास्त्री की नियुक्ति हो गई। सविनय अवज्ञा आंदोलन से ही राष्ट्रीय विद्यालय गोगरी बंद पड़ा था, पुनः विद्यालय को संचालित करने के लिए सुरेश चंद्र मिश्र ने सुरेंद्रनाथ शास्त्री से अनुरोध किया। वे 6 माह की छुट्टी लेकर विद्यालय को संचालित करने के लिए गोगरी आ गए।[14]

भारत छोड़ो आंदोलन का प्रस्ताव काँग्रेस कार्य समिति के वर्धा बैठक में 14 जुलाई 1942 को पारित किया गया। काँग्रेस कार्य समिति ने 8 अगस्त 1942 को मुंबई के अधिवेशन में भारत छोड़ो आंदोलन प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस आंदोलन के लिए गांधी जी ने "करो या मरो" का नारा दिया। 9 अगस्त, 1942 को प्रातःकाल (ऑपरेशन जीरो आवर) ही गांधी जी एवं काँग्रेस के अन्य सभी महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिये गये। गांधी जी को पुणे के आगा खाँ महल में तथा काँग्रेस कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों को अहमदनगर के दुर्ग में रखा गया था। सरोजिनी नायडू एवं कस्तूरबा गांधी को भी आगा खाँ महल में रखा गया था ,जहां कुछ दिनों बाद कस्तूरबा गांधी की मृत्यु हो गई। जवाहरलाल नेहरू को अल्मोड़ा जेल में और मौलाना अबुल कलाम आजाद को बाकुड़ा जेल में रखा गया। पटना के कलेक्टर डब्लू जी० आर्चर ने सदाकत आश्रम जाकर राजेंद्र बाबू को गिरफ्तार कर लिया।[15] इस समय श्रीकृष्ण सिंह अपने गांव माऊर गए हुए थे। सूचना मिलते ही उन्होंने सर्वप्रथम मुंगेर में प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ताओं की एक गुप्त बैठक की और उसमें संक्षिप्त किंतु जोशीला भाषण दिया। 10 अगस्त की सुबह पटना पहुंच गए। सर्वप्रथम उन्होंने पटना विश्वविद्यालय में गुप्त रूप से प्रवेश किया तथा छात्रों के बीच भाषण दिया। उसके बाद में अपने मित्र और स्वतंत्रता आंदोलन के सहयोगी सारंगधर सिंह के निवास पर चले गए। वहीं पर पटना के कलक्टर उन्हें गिरफ्तार कर बांकीपुर जेल भेज दिया।[16] इस क्रम में आंदोलन का नेतृत्व स्थानीय स्वयंसेवक ने जारी रखा। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान भारत के विभिन्न हिस्से में आंदोलनकारी के द्वारा सरकारी भवनों पर तिरंगा झंडा फहराने, रेल लाइन को क्षतिग्रस्त करने, डाक-तार को काटने और सरकारी कार्यालय को क्षतिग्रस्त करने आदि योजना अपनाई जा रही थी। जिसके कारण सरकार के दूरसंचार और यातायात व्यवस्था बाधित हो गया। इस कार्य को मुंगेर के विभिन्न जगहों पर भी किया गया। मुंगेर के अग्रणी नेताओं की गिरफ्तारी के बाद सुरेंद्रनाथ शास्त्री अधिनायक के रूप में संघर्ष संचालन का भार संभाला और उसके लिए जमुई, बेगूसराय, मुंगेर सदर, खगड़िया, शेखपुरा, बरबीघा आदि को संगठित किया। मुंगेर शहर के लाल दरवाजा केलावाड़ी में सुरेंद्रनाथ शास्त्री ने जिला कार्यालय स्थापित किया था। साईक्लोस्टाईल से आदेश छापकर समस्त जिला में स्वतंत्रता संग्राम का कार्य संचालित होता रहा। 24 अक्टूबर 1942 ई को ब्रिटिश सार्जेंट द्वारा लाल दरवाजा संघर्ष कार्यालय पर मध्य रात्रि में छापा मारा गया जब सुरेंद्रनाथ शास्त्री, कमलेश्वरी साहू और वासुदेव झा संघर्ष कार्यालय के छत पर सो रहे थे इसी समय सभी को गिरफ्तार कर लिया। 21 अक्टूबर 1942 ई० को एन० के० बनर्जी स्पेशल मजिस्ट्रेट मुंगेर के इजलास में भारतीय दंड विधान की धारा 32(1) बी० के अधीन एक वर्ष सश्रम कारावास की सजा सुनाई और मुंगेर जेल से भागलपुर जेल इन लोगों को स्थानांतरित कर दिया गया[17]

कोलकाता में भीषण अकाल और पूर्व बंगाल में बाढ़ के कारण स्थिति बहुत गंभीर हो गई थी। पूर्वी बंगाल में भीषण आकाल से लगभग 40 लाख लोग मौत के शिकार हो गए थे। लोगों के दयनीय स्थिति से द्रवित होकर बंगाल के नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता एवं घनश्याम दास बिड़ला के सचिव भागीरथ जी कानोडिया के महामंत्रित्व में "बंगाल रिलीफ कमिटी" कार्यालय स्थापित किया गया। 1943 ई० में सुरेंद्रनाथ शास्त्री के जेल से छूटने के बाद कार्यानंय शर्मा के अनुज कृष्णदेव शर्मा जी ने पत्र लिखकर "बंगाल रिलीफ

कमिटी" द्वारा संचालित "शिशु सदनों" की देखरेख के लिए योग्य कार्यकर्ता की जरूरत के पद पर नियुक्त होने के लिए आग्रह किया। कृष्णदेव शर्मा जी के सुझाव पर सुरेंद्रनाथ शास्त्री पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) के चट्टग्राम जिला के परायकोटा और मिदनापुर जिला के खाँगदा और भुआंजीवार में स्थापित "शिशु सदनों" की देख-रेख का काम आरंभ किया। यहाँ पर सुरेंद्रनाथ शास्त्री 1946 ई० तक कार्य किये। कुछ समय बाद स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने के कारण कलकत्ता छोड़ दिए और "स्वास्थ्य भंडार" के नाम से समस्तीपुर (काशीपुर गुदड़ी) में ग्राम उद्योग तेलधानी का काम शुरू किये। स्वास्थ्य ठीक होने के बाद बिहार के बुनियादी शिक्षण प्रशिक्षण केंद्र चिरी (रांची) के एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद पलामू जिला "सतबरवा शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय" में शिक्षक नियुक्त होकर कार्य करने लगे।[18]

देश की आजादी के बाद 1951- 52 ईस्वी में आम चुनाव हुआ। इस प्रथम चुनाव में परबत्ता विधानसभा क्षेत्र से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव में लड़े, जिसमें वे असफल रहे। 1952 ई० से लेकर 1977 ई० तक "उच्च विद्यालय बैसा" के प्रधानाध्यापक के पद पर रहे। 1985 ई० से "अखिल भारतीय स्वतंत्रता सेनानी संगठन" जिला संगठन खगड़िया इकाई के अध्यक्ष पद पर निर्विरोध बने रहे। इन महान स्वतंत्रता सेनानी का देहांत 8 जनवरी 2013 ई० को हो गया।

संदर्भ सूची :

1. सुरेंद्रनाथ शास्त्री की अप्रकाशित प्रकाशित डायरी
2. वहीं
3. वहीं
4. डॉक्टर कैलाश पंडित, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में दास्तां फरकिया के शहादत की, अनुचिंतन फाउंडेशन खगड़िया, 2020, पृष्ठ संख्या 12
5. उपरोक्त वहीं
6. डॉ० समीर कुमार सिंह, बिहार के राजनीतिक एवं सामाजिक संदर्भ में डॉक्टर श्री कृष्णा सिंह का योगदान, पटना, 2001, पृष्ठ संख्या 50
7. वहीं, पृष्ठ संख्या, 51- 52
8. उपरोक्त वहीं, पृष्ठ संख्या 14- 15
9. वहीं, पृष्ठ संख्या 16-17
10. उपरोक्त वहीं,
11. वहीं
12. वहीं
13. वहीं
14. वहीं
15. डॉ के० के० दत्त , बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास -भाग 3, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, तृतीय संस्करण फरवरी 2014, पृष्ठ संख्या 28 - 29
16. उपरोक्त वहीं, पृष्ठ संख्या 63- 64
17. उपरोक्त वहीं, पृष्ठ संख्या 54
18. उपरोक्त वहीं

उत्तररामचरिते वर्णविन्यासवक्रताया वैचित्र्यम्

डॉ. प्रियव्रत वेहेरा*

प्रस्तावना –

काव्यत्वविमर्शविविदिसायामुच्यते –

अपारे काव्यसंसारे कविरेवप्रजापति
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥[१]

भामह – कुन्तकस्तथा ध्वनिवादीनां मते शब्दानां तदर्थं संयोगं च काव्यम् । अपरे जयदेव – पण्डितजगन्नाथ - दण्ड्यादय आचार्याः केवलं शब्दमात्रं काव्यत्वमिति स्वीकुर्वन्ति ।

दशमशतकस्यान्तिमचरणे भामहकृतं काव्यलक्षणम् –'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' इत्यस्य विकाशं विधाय आचार्यकुन्तकेन 'वक्रोक्तिजीवितम्' इति ग्रन्थे सूक्ष्मचिन्तनेन नवीनं काव्यलक्षणं विपश्चीकृतम् । यथा –

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि ॥[२]

वक्रोक्तिसम्प्रदायस्य प्रतिष्ठातृरूपेण आचार्यकुन्तकेन वक्रोक्तिरेव काव्यस्य जीवनमिति उक्त्वा काव्यस्वरूपं विहितम् ।

भारतीयार्षसस्कृतिपरम्परायां संस्कृतवाङ्मये वहुप्राचीनकालादेव वक्रोक्तिशब्दस्य प्रयोगः दृश्यते । वाणभट्टस्य कृतौ कादम्वर्यां चन्द्रापीडस्य राजधानीवर्णनाप्रसङ्गे वक्रोक्तिशब्दस्य प्रयोगः परिदृश्यते । कथने अधिकचमत्कारः , वचनशैली सामान्यतया वक्रोक्तिरित्युच्यते । ऐतिहासिकदृष्ट्या अलङ्कारजगति वक्रोक्तिविषय अतिशोयक्तेः नामान्तरमिति भामहेन स्वीकृतम् । तन्मते काव्यस्य मूलतत्वं वक्रोक्तिरिति तथाहि –

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना ॥[३]

कूटशब्दाः - कुन्तकः, वक्रोक्तिः, उत्तररामचरितः, वर्णविन्यासवक्रता ।

वक्रोक्तेः स्वरूपम्

भामहमते वक्रोक्तिः सर्वेषामलङ्काराणां मूलम् एवं सामान्यवार्त्तालापात् भिन्नः। परन्तु वक्रोक्तिसम्प्रदायस्य प्रतिष्ठाता कुन्तकः वक्रक्तेः लक्षणं सर्वेभ्यः विलक्षणतया वदति । तस्य मते कस्यापि वस्तुस्वरूपं साधारणतया न उक्त्वा अलौकिकतया कथनं भवति वक्रोक्तिः।अनेन भमहादिकृतवक्रोक्तिलक्षणं खण्डितम् । एवं वक्रोक्तिरेव काव्यस्य जीवनमिति प्रतिपादितम् । तेन वक्रोक्तिजीवितमितिग्रन्थं विरच्य पौढतया स्वमार्मिकविचारः प्रतिपादितः । वक्रोक्तेः षड्भेदाः विवेचिताः ।

१.वर्णविन्यासवक्रता
२.पदपूर्वार्धवक्रता
३. पदोत्तरार्धः वा प्रत्ययवक्रता
४. वाक्यवक्रता
५. प्रकरणवक्रता
६. प्रबन्धवक्रता

तथा चोक्तम् –

कविव्यापारवक्रत्वप्रकाराः सम्भवन्ति षट् ।
प्रत्येकं वहवो भेदास्तेषां विच्छित्तिशोभिनः ॥[४]

* सहायकाचार्यः, एम्.पि.सि स्वयंशासितमहाविद्यालयः, तखतपुरम्, वारिपदा, ओडिशा
Email : priyabratabehera79@gmail.com

एतासु षड्विधवक्रोक्तिषु तेन काव्यत्तत्वस्य रसः, ध्वनिः, अलङ्कारः, गुणरीत्यादयः सर्वे विषया अन्तर्भाविताः । आचार्यकुन्तकेन एतेषां विश्लेषणं स्वरचित 'वक्रोक्तिजीवितम्' पुस्तकस्य प्रथमोन्मेषे समुपन्यस्तम् । अनन्तरं द्वितीय – तृतीय - चतुर्थोन्मेषे एतस्मिन् विषये विशदीकृतम् । द्वितीयोन्मेषे वर्णविन्यासवक्रता - पदपूर्वार्धवक्रता - प्रत्ययवक्रताविषये तथा तृतीयोन्मेषे वाक्यवक्रता तथा अन्तिमोन्मेषे प्रकरणवक्रता एवं च प्रबन्धवक्रताविषये गूढतत्वं प्रतिपादितम् ।

वर्णविन्यासवक्रतायाः परिभाषा -

यत्र वर्णानामक्षराणां वा रमणीयरीत्या शब्दार्थौ व्यवस्थितौ भवतः, श्रवणेन हृदयमाह्लादितं भवति , शब्दस्य सुविन्यासेन शब्दसौन्दर्यस्य औत्कर्षं वर्धते तदेव वर्णविन्यासवक्रता इत्यभीधीयते । यथा –

प्रथममरुणच्छायस्तावत् ततः कनकप्रभ-
स्तदनु विरहोत्ताम्यतन्वीकपोलतलद्युतिः ।
प्रसरति ततो ध्वान्तक्षोदक्षमः क्षणदामुखे
सरसविसिनीकन्दच्छेदच्छविर्मृगलाञ्छनः ॥[५]

श्लोकेऽस्मिन् 'तावत् ततः कनकप्रभः' इति सन्दर्भे 'त' कार 'क' कारयोः द्वितीयचरणे 'विरहोत्ताम्यतन्वी' इत्यत्र 'त' कारस्य 'कपोलतल' इत्यत्र 'ल' कारस्य एवं च तृतीयचरणे 'ध्वान्तक्षोदक्षमः क्षणदामुखे' इत्यत्र 'क्ष' संयुक्ताक्षरं तथा 'द' कारस्य तथैव चतुर्थचरणे 'सरसविसिनी' इति पङ्क्तेः 'स' कारस्य 'कन्दच्छेदच्छविः' इत्यत्र संयुक्ताक्षर - 'च्छ'स्य आवृत्तित्वात् पद्ये अपूर्वसौन्दर्यं प्रतीयते । अत्र कविना वर्णविन्यासवक्रतायाः चित्रणं स्पष्टतया प्रतिपादितम् ।

उत्तररामचरिते वर्णविन्यासवक्रतायाः दृष्टान्तः -

उत्तररामचरिते कुन्तकरीत्या वर्णविन्यासवक्रतायाः षड्भेदाः विस्तृततया विवेचिताः । तथा हि –

१.एकस्य वर्णस्य स्वल्पान्तरावृत्तिः –

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः ।
सेक शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुनः
र्यत्स्नेहारनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं घृतम् ॥[६]

श्लोकेऽस्मिन् 'लीलोत्खात' इत्यत्र 'ल' कारस्य 'काण्डकवलच्छेदेषु' इत्यत्र 'क' कारस्य तथा द्वितीयचरणे 'पुष्यत्पुष्करः' इत्यत्र 'प' कारस्य तथा 'ष' कारस्य तृतीयचरणे 'सेक शीकरिणा करेण' इत्यत्र 'क' कारस्य तथा रेफस्य , अन्तिमचरणे 'रेफ' - 'न' कारयोरावृत्तित्वात् श्लोके अभूतपूर्वं सौन्दर्यं प्रतीयते ।

२.वर्णद्वयस्य स्वल्पान्तरावृत्तिः –

ते हि मन्ये महात्मानः , कृतघ्नेन दुरात्मना ।
मया गृहीतनामानः , स्पृश्यन्त इव पाप्मना ॥[७]

प्रस्तुतपद्ये प्रथमचरणे 'महात्मानः' 'दूरात्मना' तथा द्वितीयचरणे 'गृहीतनामानः' 'पाप्मना' शब्देषु वर्णद्वयस्य आवृत्तिः जाता । तस्मात् अत्र पौनः पून्येन वर्णद्वयस्य आवृत्तिः जायमानत्वात् द्वितीयविधः वर्णविन्यासवक्रता लक्षते ।

३.अनेकवर्णानां स्वल्पान्तरावृत्तिः –

त्वया जगन्ति पूण्यानि त्वय्यापूण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥[८]

श्लोकेऽस्मिन् 'त्वया जगन्ति पूण्यानि' 'त्वय्यपूण्या जनोक्तयः', 'नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वम्' इत्यादिशब्देषु आवृत्तिः जाता । एतदर्थमत्र अधिकवर्णानामाभीक्षणेन आवृत्तित्वात् तृतीयविधवर्णविन्यासवक्रता संदृश्यते ।

४.स्पर्शवर्णानां वर्णान्तसार्द्धमात्रवृत्तिः –

करपल्लवः स तस्याः , सहसैव जडो जडात्परिभ्रष्टः ।
परिकम्पिनः प्रकम्पी , करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन् ॥[९]

श्लोकेऽस्मिन् 'परिकम्पिनः प्रकम्पी करान्मम' इति शब्देषु स्पर्शवर्णाः वर्गान्तवर्णेन साकं संयुक्तरूपेण प्रयुक्ताः एतदर्थमेष चतुर्थविधावृत्तिरूपेण संसूच्यते ।

५.त – ल – न इत्यादिवर्णानां दित्वरूपेण आवृत्तिः –

वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः ।
भित्वा भित्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ॥[१०]

अत्र प्रथमचरणे 'वेल्लोल्ल' इत्यत्र 'ल्ल' संयुक्ताक्षरस्य आवृत्तिः दृश्यते । तस्मात् एषा पञ्चमविधवर्णविन्यासवक्रता कथ्यते ।

६. वर्णानां रेफादिसहितं संयुक्तरूपेण आवृत्तिः –

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च ॥[११]

प्रस्तुतश्लोके 'विषविसर्पः , स्पर्शे स्पर्शे' वर्गेषु वारद्वयं 'रेफ' संयुक्ताक्षरस्य प्रयोगः जातः । अतोऽत्र षष्ठविधवर्णविन्यासवक्रता दरीदृश्यते ।

एवं रीत्या वर्णविन्यासवक्रतायाः वैचित्र्यमाचार्यकुन्तकेन वहुत्र प्रयुक्तम् । यत्र अपरैराचार्यै प्रयुज्यमाना अनुप्रासान्तर्गताः भेदाः , वृत्रयः , गुणाः , यमकानि यमकभाषाश्च वर्णविन्यासवक्रतायां स्फुटीकृताः भवन्ति । शब्दालङ्कारेषु वृत्तीनामाश्रयणात् वर्णचमत्कारस्य विवेचनं वहुत्र परिलक्ष्यते । अतः आचार्यकुन्तकस्य वर्णविन्यासवक्रतायाः महनीयत्वं सर्वदैव कविभिः लेखकैरालङ्कारिकैश्च काले काले प्रशस्यते ।

पादटीकाः

१. अग्निपुराणम् ३३९.१०
२.वक्रो.जी -१.७
३.काव्यालंकारः ३.८५
४.वक्रो.जी – १.१८
५.वक्रो.जी – १.४१
६.उ.रा - ३.१६
७.उ.रा – १.४८
८.उ.रा – १.४३
९.उ.रा - ३.४१
१०.उ.रा – ३.३६
११.उ.रा – १.३५

सहायकग्रन्थसूची

१. अग्निपुराण, मूलसंस्कृतपाठः तथा हिन्दी अनुवादयुक्तम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०२३.

२. द्विवेदी, दशरथ, वक्रोक्तिजीवितम्, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,१९७७.

३. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, २०१०.

४. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, दशम संस्करण, २००१.

५. माथुर, प्रेरणा, उत्तररामचरितम्, विशाल प्रकाशन, २०११.

६. झा,वेचन, काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः, चौखम्बासंस्कृतसंस्थानम्, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, २०९

७. त्रीपाठी, ड० रामसागर, ध्वन्यालोकः, मोतिलालवनारसी दास, वाराणसी, दिल्ली

८. त्रीपाठी, रुद्रदेव,संस्कृत-साहित्य में शब्दालंकार, श्रीलालबाहादुरशास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली,१९७२.

९. दाहलः, आचार्य लोकमणि, संस्कृतसाहित्येतिहासः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २०१६.

१०. द्विवेदी, रेवाप्रसाद, व्यक्तिविवेकः, श्रीराजानकरुय्यकविरचितसंस्कृतव्याख्योपेतं, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी.

युधिष्ठिरविजयमहाकाव्यस्य रसविमर्शः

Kalpana Nayak*

उपक्रमः

काव्यस्यात्मा रस इति आलंकारिकैराम्नायते । यस्मिन् काव्ये रसः न विद्यते तत् काव्याभासः कथ्यते । संस्कृतसाहित्ये सदैव रसस्य महत्वं दरीदृष्टम् । काव्ये कुत्र किदृशः रसः प्रामुख्येन स्थातव्यः तत्तु आलंकारिकैः विनिर्दिष्टः । नाट्यशास्त्रकारः भरतमुनिः वदति

अङ्गीरुपतया काव्येषु शृङ्गार-वीर-शान्त इति त्रिषु नितरामेकस्य वर्णनं कर्त्तव्यम् । मनुष्यस्य जीवने शृङ्गारस्य प्राधान्यात् ऐश्वर्यसम्पन्नराष्ट्रेषु शृङ्गारचेतना वर्धते । वीररसस्य नाटकेषु परिगण्यते शान्तरसः भरतमुनिना नवमरसत्वेन परिगणित । तस्मात् कथितम् शान्तोपि नवम रसः[१] ।

कूटशब्दाः – वीररसः ,शृङ्गारः, ओजगुणौचित्यम्, भावपरिपोषः, शान्तरसः, काव्याभासः ।

युधिष्ठिरविजय इति काव्यं महाभारतस्य कथावस्तुरोपरि निर्मितम् । महाभारते शृङ्गारप्रधानरसस्य निदर्शनं नास्ति तत्र संक्षिप्तसाहितिकवर्णनं परिपूर्णम् । परन्तु युधिष्ठिरविजय इति महाकाव्यं वीररसः प्रधानम् । अत्र युद्धस्य वर्णनं अधिकतया समुपन्यस्तम् । काव्ये कुत्रचित् वीररसस्य कुत्र वा रौद्ररसस्य नीर्झरः समुल्लसति । काव्येस्मिन् शृङ्गाररसस्यापि पूर्णतया विकाशः प्रदर्शितः । कविवासुदेवेन विविधनायिकानां शृङ्गारयुक्तभङ्गिमा प्रदर्शिता । यस्मात् ज्ञायते कविः शुष्कतया काव्यं न उपस्थापयति । काव्ये काचित् नायिका स्वपतिमुखात् नायिकान्तरस्य कथामाकर्ण्य कथयति– त्वं ! गोत्रस्खलने चतुरः इत्यादि । स्वभर्तुः सन्निधौ स्वकुम्भकुचयोः ताडनमित्थं विदधाति ।

अलमुपयातुं गोत्रस्खलनं त्वं समस्त्वया तुङ्गोऽत्र ।
स त्वमरमणीयः स्याः प्रणमन्मम संनिधौ न रमणीयस्य ।।
इति केलीकमलेन प्रियमन्या चलितचञ्चलीकमलेन ।
पृथुकुचकलशोभ्यां पद्भ्यां चाताडयत्सकलशोभाभ्याम् ।।[२]

नायिकानामुदामयौवनस्य चित्रणं कविना एवं विहितम् ।

वध्वा घटमानाभ्यामुरोरुहाभ्यां कयापि घटमानाभ्याम् ।
जगले रन्तुं गतया विजिगीषुभ्यां परस्परं तुङ्गतया ।।[३]

शृङ्गाररसस्य पराकाष्ठा तथा शुरतवर्णनं वक्ष्यमाणश्लोकेषु प्रदर्शितम्–

अधिकमिहासकलेन प्रोत्तस्थे प्रलपितेन हासकलेन ।
ववृधे मारीऽप्यन्तः स्त्रियः प्रियैः शयनसारोप्यन्ते ।।[४]
हृतधैर्योऽनिशकलितस्फुरदिषुकोदण्डचित्तयोनिशकलितः ।
अकृशैरतिशयनमितः स्तनभारैः स्त्रीगणोऽथ रतिशयनमितः ।।[५]
अभजत रागो हृदयं स्त्रीणामभवच्च कमितुरागोहृदयम् ।
अहरत वामावासः सोऽपि ततोऽभान्नतभ्रुवामावासः ॥[६]
अजनि पुनर्मणितेन व्यजायि वीणारवोऽपि नर्मणि तेन ।
विललास द्राग्रधरः पीतोऽपि प्रियतमेन सद्रागधरः ॥[७]
कृतकलकलहस्ताभिर्वलयेनाकारि सुरतकलहस्ताभिः ।
पुष्पं धम्मिल्लेन प्रीत्येवावर्षि बहुविधं मल्लेन ॥[८]
अधरितसारवतालं रेणे वलयेन रत्नसारवतालम् ।

* Research Scholar, Dept. of Sanskrit, Utkal University, Vani Vihar, BBSR, Odisha, India
Email : kalpana1992nayak@gmail.com

सार्धं रोमावलिभिः स्त्रीणां प्रण(न)नर्त कुचभरोऽमा वलिभिः ॥[९]
च्युतपरमाकल्पानां रतिरभसात्सुभ्रुवां रमाकल्पानाम् ।
रुचिमधिकामङ्गलता निन्ये स्वेदाम्भसा निकामं गलता ॥[१०]
विगलन्नानामाल्यस्फुरत्कबर्या सहाङ्गनानामाल्यः ।
पेतुरुपरि रम्भाणां समोरवः प्रेयसां सपरिरम्भाणाम् ॥[११]

महाकवेः करुणरसनितरां मर्मस्पर्शी विद्यते । अत्र अनुकूलपरिवेशनिर्माणाय वासुदेवस्य कला नैपुण्यं विलक्षणम् । द्रौपद्या कर्षणसमये दुःशासनः द्रौपदीं सभायायां नितवान् । तत्र सर्वेषु वयवृद्धेषु आत्मानं द्रौपदी असुरक्षितां मन्यते स्म । द्रौपद्या किदृशी अवस्था संजाता ततु पाठकैरनुमातुं शक्यते । द्रैपदी तदा धृतराष्ट्रं तथा गान्धारिं स्वरक्षायै निवेदितवती । तस्या वचनं कोऽपि न शृतवान् । तत्र अधिकं किं वक्तुं शक्यते यत् समग्रसभासद्वर्गसम्बन्धे यदा स्वपतिरपि द्रौपदीं प्रति स्वदृष्टिं न दत्तवान् । तथाहि–

भरणीयाहं तव च श्वशुर न मे श्रूयते त्वया हन्त वचः ।
गान्धार्यम्ब तवार्ये न समोपेक्षा सुते स्वयं बत वार्ये ॥[१२]

एवं रित्या महाकाव्ये अर्जुनस्य कारुण्यं दुःसहमासीत् । यदा तस्य पुत्र अधर्म अनीतिवसात् अभिमन्योः वधः संञ्जातः, अर्जुनमेतद् ज्ञात्वा विलपितवान् । तदा केवलं कस्यचित् पितुः अन्तर्निहितदुःखं अवर्णनीयं भवति–

क्रोशति नामात्र मयि प्रदिश मुखेन्दोर्विभावनामात्रमयि ।
एहि कृपां सौभद्र मैवं शेष्व महति पांसौ भद्र ॥[१३]

वीररसः युधिष्ठिरविजयकाव्यस्य प्रामुख्यं विभर्त्ति । यदा युधिष्ठिरः श्रीकृष्णं दूतरुपेण पञ्चग्रामान् लब्धुं दुर्योधनसन्निधौ प्रेषितवान् । परन्तु तादृशसन्धिप्रस्तावे दुर्योधनः स्वस्य वैमत्यं प्रकटिचवान् । अत्र भगवाता कृष्णेन स्वोत्साहमुक्तम् यत्र वीररसस्य विश्लेषणं विहितम्–

विदलितमस्तककुम्भिव्रातश्रमणभ्रमत्समस्तककुम्भि ।
ऊरुबलकङ्करवाणि प्रधनान्यचिराद्भ्रयानकं करवाणि ॥
रणभुवि केशव सासृक्पङ्कपुरीतत्कपालकेशवसासृक् ।
जवभागदयालूनां द्विषां ततिं पातयामि गदया लूनाम् ॥[१४]

युद्धकालिनविभत्सदृश्यस्य वर्णनं समुपलभ्यते यथा–

गुरुमत्सरसादरुषः पतिताः क्षरितासृजश्च सरसादरुषः ।
दुधुवुः पादानश्वा हर्षाद्भ्रषति स्म कृतवपादानः श्वा ॥[१५]
अशनैरस्थिरदन्तस्थानाः श्वानो बभूवुरस्थि रदन्तः ।
लोहितपङ्कं कवलं चक्रे च क्रव्यलोलुपं कङ्कबलम् ॥[१६]

तत्र हास्यरसस्य चित्रणमपि चरितार्थं लक्ष्यते । वीराटपुत्र – उत्तरस्य तुछप्रलापश्च हास्यरसरुपेण दृश्यते । कौरवानां शैन्यवलं दृष्ट्वा भयभितभूत्वा युद्धक्षेत्रात् पलायनं वृहनलायाकृते नीतरां प्रलापमात्रं । तस्मात् वृहनलां प्रति उच्यते– हे वृहनले ! सदयं रथं प्रति समागच्छ यतः शत्रवोऽस्मान् प्रतिधावन्ति ।
अत्र उत्तर-वृहनला स्थितिः प्रहेलिका मात्रस ।

एवं रीत्या भयानकरसस्य विवरणं दृश्यते–

काङ्क्षितकङ्कालेन स्फुटतडिदभ्रत्विषाधिकं कालेन ।
चलता सालातेन प्रचुक्षुभे भूः प्रभग्नसाला तेन ॥[१७]
इति वातापत्येन प्रोक्तं वचनं निशम्य तापत्येन ।
स नियतमायतबाहो धन्योऽहं योऽलमधिगमाय तवाहो ॥[१८]

एवं च रौद्ररसस्य दृष्टान्तः यथा–

ताभ्यां रसमानाभ्यां कर्णेन किरीटिना च रसमानाभ्याम् ।
उद्धतरसमा नाभ्यां युद्धे विदधे परस्परसमानाभ्याम् ॥[१९]

तथा हि शान्तरससन्दर्भे कथितम्–

जननिलयो नित्या गा यश्च विचिक्ये कृताब्जयोनित्यागाः ।
कर्तुमिव स्वान्वेषस्फुटनिष्क्रयमक्षिजितविवस्वान्वेषः ॥[२०]
उदधिपयश्चक्रान्तः कच्छपवेशं विधाय यश्च क्रान्तः ।
पृष्ठेनागाभोऽगं मन्दरमुदधादुदूढनागाभोगम् ॥[२१]
यश्च धरण्याक्षेपस्फुटवैरिण्युपगते हिरण्याक्षेपः ।
सपदि वराहवपुष्टां तामुद्धर्तुं दधौ वराहवपुष्टाम् ॥[२२]
धृतनरसिंहाकारं रिपुगणमानीय लसदसिं हाकारम् ।
योऽस्तरुगरिमाशूरःस्थले नखैरभिनदधिकगरिमा शूरः ॥[२३]
अवनतदेवामनतामातन्वानः सतां वामनताम् ।
योऽधिकतरसन्नेहे दैत्यबले बलिमपास्तरसं नेहे ॥[२४]
अजनि च यो गवि रामः कुले भृगूणामसन्नियोगविरामः ।
यो धृतपरशू राज्ञश्चकर्त समरे निरस्तपरशूराज्ञः ॥[२५]
अस्तसमस्तकलङ्कः कपिबलकम्पितसुबेलमस्तकलङ्कः ।
यश्च यमक्षयमनयन्निशाचराणां निकायमक्षयमनयम् ॥[२६]
गुरुनियमारोहिण्यां जातो मुसलीति समहिमा रोहिण्याम् ।
योऽधित हालापरतामरिसेनामपि चकार हालापरताम् ॥[२७]
निजमहसा धुतदनुजस्त्रातुं स जगन्ति साधु तदनुजः ।
जननमयादवनिलये सति देवक्यां य एष यादवनिलये ॥[२८]
जनताः कलिततमोहा भूयोऽप्ययमेव भक्तिकलिततमोहा ।
संहर्ता कल्यन्ते तमृते पूजाः क्व मतिमता कल्यन्ते ॥[२९]
दलिताञ्जननीलाभस्कन्ध न बन्ध्यो ममाद्य जननीलाभः ।
जन्म स तावल्लभते कारुण्यं यत्र गिरिसुतावल्लभ ते ॥[३०]
उदितः सच्चित्तत्त्वं ब्रह्मेति दधद्भिरच्छसच्चित्तत्वम् ।
गुरुमहिमा ननु परमस्त्रय्या त्वं बोधितः पुमाननुपमरमः ॥[३१]
यदि देव सुधाभानुः खं मरुदात्मानलोऽम्बु वसुधा भानुः ।
प्रतिपन्ना भवदन्तः परं वराकाः शरद्धनाभ वदन्तः ॥[३२]
विगलितनरकेशे ते निन्दावानिन्द्र एव नरके शेते ।
मुदितमना देव त्वं कृमयेऽपि ददासि चिन्तनादेव त्वम् ॥[३३]
न जगति वै भव मत्तः पुमान्प्रमत्तोऽस्ति वीयवैभवमत्तः ।
सततं यो मे शरणं तेन हि कृतवांस्त्वयोमेश रणम् ॥[३४]
अपि परिभवदे वादे यदपकृतं संगरे च भव देवादे ।
मयि खलु घनमोहरते क्षन्तव्यं तत्त्वयानघ नमो हर ते ।।[३५]

तत्र काव्यकलामण्डनदृष्ट्या नवरसरुचिरं काव्यमिदं वासुदेवेन रसाप्लुतं विधाय प्रणीतमिति ।

उपसंहारः

युधिष्ठिरविजयकाव्ये रससिद्धान्तस्य चरमोत्कर्षोऽस्याः ग्रन्थसमीक्षायाः परिशीलनेन इदं स्पष्टं भवति यत् महाकविवासुदेवप्रणीतं 'युधिष्ठिरविजयम्' केवलं शब्दालङ्कारस्य (यमकस्य) क्रीडाभूमिः नास्ति, अपितु रससिद्धान्तस्यापि एकं मूर्धन्यं निदर्शनं वर्तते । आनन्दवर्धनादिभिः आचार्यैः उक्तं यत् – "नहि रसाद् ऋते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते" । अस्मिन् महाकाव्ये रसस्य सा एव महती भूमिका अस्ति । यद्यपि मूलग्रन्थः महाभारतं शान्तरसप्रधानं मन्यते (यथा आनन्दवर्धनेन ध्वन्यालओके प्रतिपादितम्), तथापि महाकविना वासुदेवेन स्वकीये अस्मिन् काव्ये वीररसः अङ्गीरस (मुख्यरस) रुपेण सन्निवेशितः । युधिष्ठिरस्य विजयः, धर्मस्य विजयः, न्यायार्थं च कृतः संग्रामः

अस्य रसस्य स्थायीभावं उत्साहं परं परिपोषं प्रापयति । काव्ये वीररसस्य आधिक्यं वर्तते इति कृत्वा अत्र शुष्कता नास्ति । यतो हि कवेः दृष्टिः रससन्तुलने अतीव पटुः अस्ति । युद्धवर्णनप्रसङ्गेषु यत्र रौद्र-बीभत्स-भयानकरसानां निर्झरः प्रवहति, तत्रैव पात्राणां मानसिकशान्तये, कथायाः गतिशीलतायै च शृङ्गाररसस्यापि सुभगः सन्निवेशः विहितः । समीक्षया ज्ञायते यत् वासुदेवः नारीसौन्दर्यस्य, विविधनायिकानां शृङ्गारयुक्तभङ्गीनां च वर्णने कालिदासादिवत् सिद्धहस्तः अस्ति । नायिकानां मानः, गोत्रस्खलने सति ईर्ष्या, पतिं प्रति उपालम्भः, कामुकचेष्टाः च काव्ये सरसतां सञ्चारयन्ति ।

अतः अस्मिन् प्रथमपृष्ठे निष्कर्षरुपेण वक्तुं शक्यते यत् काव्ये अङ्गीभूतः वीररसः अङ्गरसभूतैः (सहायकरसैः) शृङ्गार-रौद्रादिभिः सह ईदृशं तादात्म्यं भजते, येन समग्रं काव्यं सहृदयानां चेतांसि आह्लादयितुं समर्थं भवति । शब्दार्थयोः रससङ्गतिः कला-पक्षयोः सामञ्जस्यं च ग्रन्थसमीक्षायाः द्वितीये पक्षे इयं शास्त्रीया निष्पत्तिः जायते यत् वासुदेवस्य काव्ये अलङ्कार-रसयोः अद्भुतं सामञ्जस्यं वर्तते । प्रायशः ध्वन्यालोकादिषु ग्रन्थेषु प्रतिपादितं यत् यमकादयः शब्दालङ्काराः रसप्रवाहे विघ्नं कुर्वन्ति, यतो हि तेषु कवेः ध्यानं शब्दसंघटने अधिकं भवति, रसे च न्यूनम् । किन्तु युधिष्ठिरविजये अयं नियमः अपवादरूपेण परिणमते । अत्र कवेः प्रतिभा तादृशी विलक्षणा अस्ति यत् जटिलानां यमकानां निर्माणवेलायामपि रसस्य प्रवाहः क्वचिदपि न रुद्ध्यते ।

काव्ये प्रयुक्तानि पद्यानि (यथा ग्रन्थे उद्धृतम् – "अलमुपयातुं गोत्रस्खलनं त्वं समस्त्वया तुङ्गोऽत्र..."), एतत् प्रमाणीकुर्वन्ति यत् वासुदेवः शृङ्गारस्य गूढतमाः चेष्टाः अपि यमकमाध्यमेन अतीव सरसतापूर्वकं प्रकटीकर्तुं शक्नोति । नायिकायाः कुचकुम्भताडनम्, भर्तुः वञ्चनायां सत्यां कोपः, प्रणयकलहश्च अत्र विप्रलम्भ-सम्भोगशृङ्गारयोः सुचारुपरिपाकं जनयन्ति । एतेन सिद्धं भवति यत् कविः केवलं वीररसस्य युद्धकथां न श्रावयति,अपितु मानवहृदयस्य कोमलभावनानामपि सूक्ष्मं चित्रणं करोति । महाकविवासुदेवविरचितं 'युधिष्ठिरविजयमहाकाव्यम्' रस-भाव-अलङ्कार-छन्दसां सङ्गमस्थलम् अस्ति । अत्र वीररसस्य अङ्गीरूपेण प्रतिष्ठापनं तथा च शृङ्गाररसस्य अङ्गरूपेण पोषणं काव्यशास्त्रस्य नियमानुकूलम् अस्ति । काव्ये ओजोगुणस्य प्राधान्ये सत्यपि प्रसाद-माधुर्यगुणयोः अभावः न वर्तते । अतः

शास्त्रीयदृष्ट्या इदं महाकाव्यं रससमीक्षायाः कषपट्टिकायां पूर्णतः सुवर्णवत् भासते, तथा च संस्कृतसाहित्ये अस्य स्थानं सर्वोपरि गौरवमयं वर्तते ।

पादटीकाः

१. नाट्यशास्त्रम् – भरतमुनिः

२. युधिष्ठिरविजयकाव्यम् – २.७३,७४

३. यु . वि – २.६५

४. यु . वि – २.१०४

५. यु . वि – २.१०५

६. यु . वि – २.१०६

७. यु . वि – २.१०७

८. यु . वि – २.१०८

९. यु . वि – २.१०९

१०. यु . वि – २.११०

११. यु . वि – २.१११

१२. यु . वि – ३.४७

१३. यु . वि – ७.८९

१४. यु . वि – ६. ९२,९३

१५. यु . वि – ७.१५
१६. यु . वि – ७.१८
१७. यु . वि – ३.१०१
१८. यु . वि – ५ .२३
१९. यु . वि – ८.५९
२०. यु . वि – ३.४१
२१. यु . वि – ३.४२
२२. यु . वि – ३.४३
२३. यु . वि – ३.४४
२४. यु . वि – ३.४५
२५. यु . वि – ३.४६
२६. यु . वि – ३.४७
२७. यु . वि – ३.४८
२८. यु . वि – ३.४९
२९. यु . वि – ३.५०
३०. यु . वि – ४.७६
३१. यु . वि – ४.७७
३२. यु . वि – ४.७८
३३. यु . वि – ४.७९
३४. यु . वि – ४.८०
३५. यु . वि – ४.८१

सहायकग्रन्थसूची

१. अग्निपुराण, मूलसंस्कृतपाठः तथा हिन्दी अनुवादयुक्तम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०२३.
२. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, २०१०.
३. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, दशम संस्करण, २००१.
४. कर्मकर, रघुनाथ दामोदर, काव्यप्रकाशः, भण्डारकर ओरिएण्टाल रिसर्च इन्स्टिच्युट्, पुना, १९५०.
५. चौधरी, सत्यदेव, रुद्रट-प्रणीत काव्यालंकारः, अंशुप्रभाऽख्य-हिन्दीव्याख्या-सहित, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, १९६५.
६. झा, वद्रीनाथ, रसगङ्गाधरः, चौखम्बाविद्याभवनं, वाराणसी, १९७८.
७. झा,वेचन, काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः, चौखम्बासंस्कृतसंस्थानम्, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, २०९
८. त्रीपाठी, ड० रामसागर, ध्वन्यालोकः, मोतिलालवनारसी दास, वाराणसी, दिल्ली
९. त्रीपाठी, रुद्रदेव,संस्कृत-साहित्य में शब्दालंकार, श्रीलालबाहादुरशास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली,१९७२.
१०. दाहलः, आचार्य लोकमणि, संस्कृतसाहित्येतिहासः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २०१६.
११. द्विवेदी, रेवाप्रसाद, व्यक्तिविवेकः, श्रीराजानकरुय्यकविरचितसंस्कृतव्याख्योपेतं, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी.

१२. द्विवेदी, शिवप्रसाद, ध्वन्यालोकः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१५.

१३. नागर, रवीशङ्कर, नाट्यशास्त्रम्, अभिनवभारतीटीकोपेतम्, परिमल पब्लिकेशन्स्, दिल्ली, २०२३.

१४. पण्डित, दुर्गाप्रशाद, पणशिकर, शास्त्री, वासुदेव, लक्ष्मण, च रसगङ्गाधरः, तुकाराम जावजी, निर्णयसागर प्रेस,१९१६.

१५. पण्डित, शिवदत्त, पर्व, काशिनाथ पाण्डुरङ्ग च, युधिष्ठिरविजयम्, पाण्डुरङ्ग जवाजी, निर्णय सागर सागर प्रेस, बम्बे, १९३०.

१६. पाण्डेय, भृगुनाथ, एकावली, सरलाटीकोपेतम्, अजय प्रिन्टर्स, कज्जाकपुरा, वाराणसी, १९९६.

१७. प्रसाद, दुर्गा, काव्यप्रकाशः, मोतीलालवनारसी दास,दिल्ली,१९८३.

१८. मिश्रः, श्रीनारायण, झा, शशिनाथ, विद्यावाचस्पतिः, च, रसगङ्गाधरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २०१७.

१९. शोङ्कनाथविरचित-बालव्युत्पत्तिकारिणी-टीकोपेतम्, युधिष्ठिरविजयम्, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली,२००७.

निरालाः राम की शक्ति–पूजा में आत्मसंघर्ष का विश्लेषण

डॉ. संगीता कुमारी*

सारांश:

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविता "राम की शक्ति-पूजा" हिन्दी की आधुनिक मिथकीय कविता का एक शिखर है। इसमें राम देवत्व के स्थिर प्रतीक नहीं, बल्कि पराजय, संशय, आत्मग्लानि, स्मृति, साधना और शक्ति-अर्जन से गुजरते हुए आधुनिक मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र कविता के कथानक, प्रतीक-योजना, अंधकार-बिम्ब, सीता-स्मृति, "अन्याय जिधर है, उधर शक्ति" की वैचारिक विडंबना, जाम्बवान के परामर्श, आत्मग्लानि और "एक और मन" की अवधारणा के माध्यम से आत्मसंघर्ष का विश्लेषण करता है। प्रतिपाद्य यह है कि कविता में विजय बाह्य वरदान नहीं, बल्कि मनुष्य द्वारा शक्ति के आंतरिक आत्मसातीकरण का परिणाम है।

बीज-शब्द: निराला, राम की शक्ति-पूजा, आत्मसंघर्ष, शक्ति-साधना, आधुनिक मिथक, सीता-स्मृति, पुरुषोत्तम नवीन।

१. प्रस्तावना: कविता, काल और समस्या

"राम की शक्ति-पूजा" निराला की उन रचनाओं में है जहाँ पौराणिक कथा आधुनिक मनुष्य की भीतरी बेचैनी का रूप लेती है। कविता का कथानक राम-रावण युद्ध की निर्णायक घड़ी से जुड़ा है, पर इसका वास्तविक केंद्र युद्धभूमि से अधिक राम की अंतःभूमि है। रचना-प्रसंग की दृष्टि से यह कविता १९३६ में लिखी और प्रकाशित हुई; रचनावली में इसके रचनाकाल और प्रकाशन का उल्लेख मिलता है। निराला ने स्वयं भी "राम की शक्ति-पूजा" के संशोधन-संदर्भ का उल्लेख किया था, जिससे कविता के प्रति उनकी कलात्मक सजगता स्पष्ट होती है।[1][2]

इस कविता में आत्मसंघर्ष का अर्थ केवल मनोवैज्ञानिक द्वंद्व नहीं है। यह धर्म और शक्ति, न्याय और पराजय, स्मृति और संकल्प, करुणा और वीरता, मनुष्यत्व और दिव्यता के बीच का संघर्ष है। राम यहाँ पूर्वनिश्चित विजेता नहीं हैं; वे उस मनुष्य की तरह दिखाई देते हैं जिसके सामने नैतिक सत्य है, पर तत्कालीन शक्ति उसके विरोधी पक्ष में दिखती है। इसीलिए कविता का प्रश्न है–न्याय के पक्ष में खड़े मनुष्य को शक्ति कैसे प्राप्त हो?

२. मिथक का आधुनिक रूपांतरण

कविता की आरम्भिक पंक्तियाँ ही पारम्परिक रामकथा को एक नए संकट-बोध में रूपांतरित कर देती हैं:

> "रवि हुआ अस्त; ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
> रह गया राम-रावण का अपराजेय समर"[3]

---

* सहायक प्राध्यापक (अतिथि), हिंदी विभाग, राम जयपाल कॉलेज, छपरा, जेपीयू

[1] नन्दकिशोर नवल, भूमिका, निराला रचनावली-१, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ५।

[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१९।

[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१०।

"रवि हुआ अस्त" केवल दिन के समाप्त होने का संकेत नहीं है; यह निश्चित विजय के आलोक के ढल जाने का संकेत है। "ज्योति के पत्र" पर लिखा हुआ "अपराजेय समर" इस बात को व्यक्त करता है कि युद्ध अभी निर्णय से बाहर है। राम और रावण के बीच संघर्ष नैतिक रूप से स्पष्ट होते हुए भी व्यावहारिक रूप से अनिर्णीत है। यही अनिर्णय आत्मसंघर्ष की शुरुआत है। मिथक में राम सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हो सकते हैं, पर निराला की कविता में वे समय, पराजय और संशय से जूझते हैं।

आधुनिकता का यह रूपांतरण महत्त्वपूर्ण है। पौराणिक पात्र को मनुष्य की सीमाओं में लाकर निराला उसे छोटा नहीं करते; बल्कि उसकी महत्ता इस बात में स्थापित करते हैं कि वह संकट के भीतर शक्ति अर्जित करता है। राम की महिमा जन्मजात देवत्व में नहीं, अर्जित आत्म-शक्ति में प्रकट होती है। यही कारण है कि कविता का अंत "पुरुषोत्तम नवीन" पर होता है—पुराना आदर्श नए आत्मसंघर्ष से गुजरकर नवीन बनता है।

३. अंधकार, पराजय और अंतःभूमि

कविता में बाहरी प्रकृति राम की आंतरिक दशा का विस्तार बन जाती है। युद्ध के बाद का अंधकार, समुद्र की गर्जना, दिशा-ज्ञान का खोना और केवल एक मशाल का जलना—ये सब दृश्य मनोवैज्ञानिक अर्थ ग्रहण करते हैं:

"है अमानिशा; उगलता गगन घन अंधकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।"[4]

"अमानिशा" में अंधकार का चरम है; "दिशा का ज्ञान" खोना आत्मविश्वास का संकट है; "स्तब्ध पवन" गति का ठहराव है; और "केवल जलती मशाल" उस चेतना का प्रतीक है जो पूर्ण अंधकार में भी बुझी नहीं है। आत्मसंघर्ष की संरचना यहीं बनती है—बाह्य परिस्थितियाँ विरोधी हैं, पर चेतना का एक केंद्र बचा हुआ है।

रामविलास शर्मा ने इस कविता में न्याय और शक्ति के संबंध को रेखांकित करते हुए लिखा है कि अन्याय के सामने ज्ञान की पराजय देखकर कवि का ध्यान शक्ति-प्राप्ति की ओर जाता है; उनके अनुसार निराला के लिए योग का उद्देश्य संसार से पलायन नहीं, बल्कि शक्ति-संचय करके इसी संसार में संघर्ष करना है। यह टिप्पणी कविता के मूल द्वंद्व को समझने में सहायक है। राम का संघर्ष तपस्या की निष्क्रियता नहीं, सक्रिय नैतिक शक्ति की खोज है।[5]

४. "अन्याय जिधर है, उधर शक्ति": आत्मसंघर्ष की वैचारिक गाँठ

कविता में राम का सबसे तीखा अनुभव यह है कि न्याय उनके पक्ष में है, पर शक्ति विरोधी पक्ष में दिखाई देती है। वे कहते हैं:

"अन्याय जिधर है, उधर शक्ति!
कहते छल-छल हो गए नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके..."[6]

यह पंक्ति कविता का वैचारिक केंद्र है। यह राम की कमजोरी नहीं, आधुनिक नैतिक अनुभव का उद्घाटन है। संसार में न्याय का होना पर्याप्त नहीं; न्याय को ऐतिहासिक रूप से समर्थ बनाने के लिए शक्ति चाहिए। राम के आँसू करुणा के आँसू भर नहीं हैं; वे उस नैतिक सदमे के आँसू हैं जिसमें मनुष्य देखता है कि

---

[4] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३११।

[5] रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खण्ड २, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. १६०-१६१।

[6] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१४।

सत्य स्वयं अपने आप विजयी नहीं होता। इसलिए आत्मसंघर्ष का पहला चरण भ्रम-भंग है। राम को अपनी नैतिक श्रेष्ठता के भरोसे से आगे बढ़कर शक्ति की साधना करनी होगी।

रामविलास शर्मा ने राम के आँसुओं को भावुक दुर्बलता न मानकर घनीभूत शोक और नियंत्रित मन की प्रतिक्रिया के रूप में पढ़ा है। वे स्पष्ट करते हैं कि मन को नियंत्रित रखने का अर्थ अन्याय सहते रहना नहीं; राम की शक्ति-साधना रावण को परास्त करने के लिए है। इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है कि निराला का राम करुण है, किंतु निष्क्रिय नहीं; वह टूटता है ताकि नए संकल्प में पुनर्गठित हो सके।[7]

५. सीता-स्मृति और आत्मग्लानि

राम के आत्मसंघर्ष में सीता की स्मृति निर्णायक भूमिका निभाती है। युद्ध केवल राज्य या प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं है; वह प्रिय के उद्धार, स्त्री की गरिमा और अन्याय से मुक्ति का प्रश्न है। सीता-स्मृति राम को भावुक नहीं बनाती, बल्कि उनके भीतर उत्तरदायित्व का बोध तीव्र करती है। इसी कारण आत्मग्लानि का स्वर उभरता है:

> "धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
> धिक् साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध!
> जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका।"[8]

यह आत्मग्लानि आत्महीनता नहीं है। यह नायक की नैतिक सजगता है। राम अपने साधन, अपने जीवन और अपनी उपलब्धियों को प्रश्नांकित करते हैं, क्योंकि अभी तक उनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ। आत्मसंघर्ष का यह चरण अत्यंत आधुनिक है–नायक अपने गौरव के सहारे स्वयं को मुक्त नहीं करता, बल्कि स्वयं पर कठोर प्रश्न उठाता है। रामविलास शर्मा ने सीता-स्मृति को अंधकार में बिजली की चमक और आत्म-चिंतन की प्रेरणा से जोड़ा है। अतः सीता स्मृति का अर्थ केवल प्रेम-स्मरण नहीं, संघर्ष की नैतिक प्रेरणा है।[9]

६. जाम्बवान का परामर्श: आत्मसंघर्ष से साधना की ओर

कविता में जाम्बवान राम को बाहरी सांत्वना नहीं देते; वे आत्मसंघर्ष को साधना में रूपांतरित करने का मार्ग बताते हैं:

> "विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
> हे पुरुष-सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
> आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
> तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर;"[10]

इन पंक्तियों में "धारण", "आराधन" और "संयत प्राण" ऐसे शब्द हैं जो आत्मसंघर्ष को अनुशासित ऊर्जा में बदलते हैं। जाम्बवान राम को यह नहीं कहते कि विजय निश्चित है; वे कहते हैं कि शक्ति को धारण करना होगा। इसका अर्थ है कि नायक को अपनी ही चेतना में उस शक्ति का निर्माण करना होगा जो अभी विरोधी पक्ष में दिखाई देती है।

जाम्बवान की अगली सलाह कविता की आधुनिकता को और स्पष्ट करती है:

---

[7] रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खण्ड २, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. २४३-२४४।

[8] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१८।

[9] रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खण्ड २, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. २८३-२८४।

[10] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१६।

"शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनन्दन!"[11]

"मौलिक कल्पना" अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद है। निराला यहाँ परम्परागत पूजा की पुनरावृत्ति नहीं चाहते; वे शक्ति की नई कल्पना चाहते हैं। राम का आत्मसंघर्ष इसलिए साधना में बदलता है कि वे बाहरी शक्ति से भीख नहीं माँगते, बल्कि शक्ति के स्रोत को अपने भीतर जगाने की प्रक्रिया में प्रवेश करते हैं। युद्ध का विराम पलायन नहीं, तैयारी है; साधना संघर्ष का आंतरिक आयाम है।

७. "एक और मन": पराजित चेतना के भीतर अजेय संकल्प

राम की आत्मग्लानि के बाद कविता एक असाधारण मनोवैज्ञानिक मोड़ लेती है। राम के भीतर एक और मन का उद्घाटन होता है:

"वह एक और मन रहा राम का जो न थका;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण, प्राप्त कर जय,"[12]

यह "एक और मन" कविता की आत्मसंघर्ष-संरचना का सबसे सूक्ष्म बिंदु है। बाहरी मन पराजित, शोकाकुल और आत्मग्लानि से भरा है; पर भीतर का दूसरा मन अजेय है। वह दैन्य और विनय को नहीं जानता–अर्थात वह हार की याचना में नहीं बदलता। आत्मसंघर्ष में मनुष्य का विभाजन यहाँ रचनात्मक बनता है। एक मन संकट को अनुभव करता है, दूसरा मन संकट को भेदने की शक्ति जुटाता है।

निराला की आधुनिकता यही है कि वे नायक को एकरेखीय नहीं रखते। राम का व्यक्तित्व द्वंद्वात्मक है। वह देवता की तरह निर्विकार नहीं, मनुष्य की तरह टूटता है; पर टूटकर भी वह अपने भीतर अटूट संकल्प खोज लेता है। इस दृष्टि से "राम की शक्ति-पूजा" आधुनिक मनुष्य की आत्म-रचना की कविता है।

८. शक्ति का आत्मसातीकरण और विजय

पूजा के क्रम में जब नीलकमल एक कम पड़ता है, तब राम अपना नेत्र अर्पित करने के लिए तत्पर होते हैं। यह प्रसंग बताता है कि साधना बाहरी विधि से आगे बढ़कर आत्म-बलिदान तक जाती है। राम की विजय इसी बिंदु पर संभव होती है। कविता का समापन है:

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।"[13]

महाशक्ति का राम के वदन में लीन होना अत्यंत अर्थपूर्ण है। शक्ति बाहर से दी गई वस्तु नहीं रह जाती; वह राम के व्यक्तित्व में आत्मसात हो जाती है। "पुरुषोत्तम नवीन" का अर्थ भी यही है कि राम पुरानी धार्मिक प्रतिष्ठा से नहीं, संघर्ष, साधना और आत्म-बलिदान से नए मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। रामविलास शर्मा ने दुर्गा को नियति के विराट प्रतीक के रूप में देखते हुए यह भी रेखांकित किया है कि राम मृत्यु-स्वरूपा शक्ति को आत्मसात करते हैं।[14]

---

[11] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१६।

[12] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१८।

[13] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'राम की शक्ति-पूजा', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१९।

[14] रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खण्ड २, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. २४५-२४६।

इस निष्कर्ष से कविता का आत्मसंघर्ष किसी आध्यात्मिक पलायन में समाप्त नहीं होता। वह सामाजिक-नैतिक युद्ध में लौटने की तैयारी है। शक्ति-पूजा का अंतिम अर्थ है–न्याय को प्रभावी बनाने के लिए शक्ति अर्जित करना। इस अर्थ में राम की पूजा एक सक्रिय ऐतिहासिक कर्म है।

९. भाषा, छंद और नाटकीय तनाव

"राम की शक्ति-पूजा" का आत्मसंघर्ष केवल कथ्य में नहीं, भाषा और लय में भी उपस्थित है। कविता में संस्कृतनिष्ठ समास, तीव्र ध्वन्यात्मकता, विराम-चिह्नों की नाटकीयता, दृश्यात्मक बिम्ब और संवादात्मक मोड़ मिलकर ऐसा वातावरण बनाते हैं जिसमें बाहरी युद्ध और भीतरी संघर्ष एक-दूसरे में घुल जाते हैं। "अमानिशा", "अप्रतिहत", "ध्यान-मग्न", "आराधन", "संयत प्राण"–ये पद कविता को ऊँचा काव्य-तनाव देते हैं; वहीं आँसू, स्मृति और आत्मग्लानि उसे मानवीय बनाते हैं।

रामविलास शर्मा ने इस कविता की नाटकीयता और केंद्र-स्थापन को रेखांकित करते हुए बताया है कि युद्ध की पृष्ठभूमि रहते हुए भी कवि की दृष्टि राम से हटती नहीं; पूरा दृश्य राम की मानसिक गति से संचालित होता है। यही कारण है कि कविता में युद्ध का वर्णन भी अंततः आत्मसंघर्ष का रूप ले लेता है। छंद की गति कभी रुकती, कभी उछलती और कभी साधना की स्थिरता ग्रहण करती है। यह लय राम के मन की गति के अनुरूप है।[15]

निराला की भाषा यहाँ भक्ति-काव्य की सरल समर्पण-भाषा नहीं है; यह संघर्षशील साधना की भाषा है। इस भाषा में करुणा और वीरता दोनों हैं। राम की आँखों में आँसू हैं, पर वही आँख कमल के रूप में अर्पित होने को तैयार है। इस प्रकार भाषा स्वयं आत्मसंघर्ष के दो ध्रुवों–दुर्बलता और संकल्प–को एक साथ वहन करती है।

१०. निष्कर्ष

"राम की शक्ति-पूजा" में आत्मसंघर्ष की प्रक्रिया अंधकार, पराजय, स्मृति, आत्मग्लानि, परामर्श, साधना, आत्म-बलिदान और शक्ति-आत्मसातीकरण से होकर गुजरती है। राम की महत्ता इस बात में नहीं कि वे प्रारंभ से ही विजेता हैं, बल्कि इस बात में है कि वे हार की संभावना, न्याय की असहायता और शक्ति की अनुपस्थिति को पहचानते हुए स्वयं को पुनर्निर्मित करते हैं। कविता इसीलिए आधुनिक है कि वह देवता को मानवीय संघर्ष से अलग नहीं करती; वह मनुष्य के भीतर देवत्व की संभावना को संघर्ष के माध्यम से प्रकट करती है।

निराला ने मिथक को स्थिर आस्था के रूप में नहीं, जीवित नैतिक प्रश्न के रूप में ग्रहण किया। "अन्याय जिधर है, उधर शक्ति" से आरम्भ हुआ वैचारिक संकट "होगी जय" तक पहुँचता है, पर यह विजय बाह्य चमत्कार नहीं है। यह उस मनुष्य की विजय है जो अपने भीतर "एक और मन" खोजता है, साधना को कर्म से जोड़ता है और शक्ति को आत्मसात कर न्याय के पक्ष में खड़ा होता है। इसलिए "राम की शक्ति-पूजा" हिन्दी कविता में आत्मसंघर्ष, शक्ति-साधना और आधुनिक मिथक-चेतना का अत्यंत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

संदर्भ-ग्रंथ

1. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', निराला रचनावली-१, संपादक: नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खण्ड २, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खण्ड १, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. नन्दकिशोर नवल, निराला और मुक्तिबोध: चार लंबी कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. नन्ददुलारे वाजपेयी, कवि निराला, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।

◂◂ ▸▸

[15] रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, खण्ड २, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३०६-३१०।

स्वामी रामानन्दाचार्य सम्मत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त

अनुज कुमार मिश्रा*

भारतीय ऋषियों ने अपनी तत्वोन्वेशी प्रतिभा से धर्म का साक्षात्कार करके शिष्य परम्परा के द्वारा जनमानस तक पहुंचाया है। निरुक्तकार कहते हैं **साक्षात्कृत धर्माण: ऋषयो बभूबु: [**निरुक्त 1.6] जिसे सम्प्रदाय के नाम से व्यवहृत किया जाता है। सम् और प्र उपसर्ग पूर्वक दा धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करके **"आतो युक् चिणकृतो:"** सूत्र से युगागम करने पर सम्प्रदाय शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ करते हुए अमरकोशकार करते हैं कि **आपृच्छन्नमथाम्नाय: सम्प्रदाय क्षये क्षिया।** [अमरकोश 3/1/7]

अर्थात् परम्परागत सदुपदेश को आम्नाय और सम्प्रदाय कहते हैं इसी अर्थ का प्रतिपादन महामहोपाध्याय भीमाचार्य अपनी अमरकृति न्यायकोश में करते हुए दिखते हैं। **"सम्प्रदाय: गुरुपरम्परागत: सदुपदेश:"** [न्यायकोश पृ. सं. 919]

शैव, शाक्त, वैष्णव आदि के भेद से सम्प्रदायो में वैविध्य दृष्टिगोचर होता है, भगवान् शंकराचार्य जी द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय शैव सम्प्रदाय है जिसे अद्वैतवाद या अद्वैत वेदान्त भी कहते हैं।

अद्वैत की व्याख्या करते हैं करते हुए बृहदारण्यक वार्तिककार सुरेशाचार्य लिखते हैं

द्विधेतं द्वीतमित्याहुस्तद्भावो द्वैतमुच्यते।
तन्निषेधेन चाद्वैतं प्रत्यक्त्वमभिधीयते।

दो प्रकार को जो प्राप्त होता है वह द्वीत है उसका भाव द्वैत है। द्वैत के अभाव को अद्वैत कहते हैं। द्विधा द्विप्रकारकं इतं प्राप्तमिति द्वीतं तस्य भावो द्वैतं न द्वैतमद्वैतम्। कुछ विद्वानों ने स्वार्थिक अण प्रज्ञादित्वात् के अनुसार **द्वयोर्भावो द्विता। द्वित एव द्वैतं न द्वैतमिति अद्वैतम्,** अद्वैत की व्युत्पत्ति की है.

अद्वैतसिद्धांत में सजातीय विजातीय स्वगतभेदरहित त्रिकालाबाध्य ज्ञानस्वरूप देशकालादिपरिच्छेद शून्य ब्रह्म ही एकमात्र वस्तु है एतदतिरिक्त मिथ्या है. मिथ्या कहते हैं **प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिबन्ध प्रतियोगिमिथ्यात्वम्**। **[**अद्वैतसिद्धि -1] ज्ञानाधिकरण में अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व मिथ्यात्व है। अत एव जगत् मिथ्या है क्योंकि ब्रह्मनिष्ठप्रपञ्चाभाव का प्रतियोगित्व प्रपञ्च जगत् में है, अतः जगत् के सत्य प्रतीति अध्यास भ्रम से होती है **स्मृतिरुप:परत्र पूर्वादृष्टाध्यास:। [**अद्वैतसिद्धि -2]

वैष्णव सम्प्रदाय

"कलौ खलु भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ।
श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवा क्षितिपावनाः ।। (पद्मोत्तरखण्ड)

"पद्मत्तोरखण्ड में कहा है कि कलियुग में श्रीसम्प्रदाय, ब्रह्मसम्प्रदाय, रुद्रसम्प्रदाय तथा सनकादिसम्प्रदाय के चार प्रकार के वैष्णव महानुभाव पृथिवी को पावन करनेवाले होंगे।

स्वामी श्रीरामाश्रयदासजी ने चार सम्प्रदायों के चार प्रवर्त्तक आचार्यों को भी प्रतिपादन किया है-

"रामानन्दे श्रियं विद्यान्मध्वाचार्ये चतुर्मुखम्।
विष्णुस्वामिनि रुद्रन्तु निम्बार्के च चतुःसनम् ॥"

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के सम्प्रदाय (श्रीसम्प्रदाय) की प्रवत्तिका श्रीपद-वाच्य जगञ्जननी श्रीजानकीजी है, जगद्गुरु श्रीमध्वाचार्यजी के सम्प्रदाय (ब्रह्मसम्प्रदाय) के प्रवर्त्तक श्री ब्रह्माजी हैं, जगद्गुरु

* शोधच्छात्र, साहित्य विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
दूरभाषः 8827946816, E-mail anujmishra20155@gmail.com

श्रीविष्णुस्वाम्याचार्यजी के सम्प्रदाय (रुद्रसम्प्रदाय) के प्रवर्त्तक श्री रुद्रजी हैं और जगदगुरु श्रीनिम्बार्काचार्यजी के सम्प्रदाय (सनकादि-सम्प्रदाय) के प्रवर्त्तक श्रीसनकादि ऋषि हैं।

चार सम्प्रदायाचार्यों के चार दार्शनिक सिद्धान्त

उक्त चार सम्प्रदायों के चार दार्शनिक सिद्धान्त लिखे हैं-

१- जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी का श्रीबोधायनाभिमत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त है,

२-जगद्गुरु श्रीमध्वाचार्यजी का द्वैत सिद्धान्त है।

३-जगद्गुरु श्रीविष्णुस्वाम्याचार्यजी का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त है ।

४-जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यजी का द्वैताद्वैत सिद्धान्त है।

श्रीमलूकद्वारपीठ के संस्थापक जगद्गुरु श्रीमलुकदासाचार्यजी ने स्वनिर्मित 'श्रीमलूकशतक में वैष्णवों के चार सम्प्रदायों का निर्देश किया है-

"जानहु श्री सनकादि अरु ब्रह्मा रुद्र उदार।
कह 'मळक' वैदिक यही सम्प्रदाय हैं चार ॥९५॥
रामानन्दाचार्य जी श्री के शुभ आचार्य।
कह 'मळक' सनकादिके श्रीनिम्बार्काचार्य ॥९६॥
कह 'मजूक' श्रीमहाके हैं श्रीमध्वाचार्य ।
विष्णुस्वामि श्रीरुद्रके सम्प्रदाय-आचार्य" ॥९७॥

भगवान् रामानन्दाचार्य जी ने प्रस्थानत्रयी पर विशिष्टाद्वैत परक आनन्दभाष्य के नाम से लिखा है, विशिष्टाद्वैत को परिभाषित करते हुए श्रुतिसिद्धान्तभाष्य जगद्गुरु अनन्तानन्दाचार्य जी लिखते हैं -

विशिष्टब्रह्मणोरैक्यं श्रुतौ कारणकार्ययोः ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तो बुधैः श्रौतस्ततो मतः ॥
सूक्ष्माभ्यां चिदचिदभ्यां च विशिष्टं ब्रह्म कारणम्।
स्थूलाभ्यां चिदचिद्भ्यां च विशिष्टं ब्रह्म कार्यकम् ॥ [श्रुतिसिद्धान्तभाष्य2-3]

चित् का अर्थ है चेतन (जीव) और अचित् का अर्थ है अचेतन। ब्रह्म सदा चित् और अचित् तत्त्वों से विशिष्ट (युक्त) ही रहता है। प्रलय दशा में ब्रह्म सूक्ष्म अर्थात् नामरूपविभाग के अयोग्य चित् और अचित् से विशिष्ट रहता है तब उसे कारणब्रह्म कहते हैं। सृष्टि दशा में ब्रह्म स्थूल अर्थात् नामरूपविभागके योग्य चित् और अचित् से विशिष्ट रहता है तब उसे कार्यब्रह्म कहते हैं। इन दोनो कार्य और कारण ब्रह्म के ऐक्य (एकता अभेद) को "विशिष्टाद्वैत" कहते हैं। इस कार्यब्रह्म और करणब्रह्म की एकता को **"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्"** (हे सौम्य श्वेतकेतु यह स्थूलचिश्चिद्विशिष्ट कार्यब्रह्मरूप जगत् पहले सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट प्रारूप कारणब्रह्म था। एक ही था और अद्वितीय ही था। यह श्रुति बतलाती है इस लिए विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त वैदिक सिद्धान्त है।

श्रीसम्प्रदाय के सभी आचार्यों ने इस सिद्धान्त को ही माना है। श्री वाल्मीकिसंहिता में लिखा है कि ऋषियो ने श्री वाल्मीकि जी से विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त के चित् अचित् तथा ईश्वर (ब्रह्म) तीन तत्त्वों को पूछा था अतः श्री विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त ही ऋषियो का सिद्धान्त है।

विशिष्टाद्वैतदर्शनम् में स्वामी भगवदाचार्य लिखतें हैं- **प्रलयावस्थायां ब्रह्म सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टं भवति । सृष्टिदशायां च स्थूल चिदचिद्विशिष्टं भवतीत्येवं कालभेदेन ब्रह्मणो द्वे अवस्थे । विशिष्टशब्द एव तदवस्थाद्वयं निर्वाहयतीति लाघवात्सूक्ष्मचिदचिदिति स्थूलचिदचिदिति विशेषण-द्वयं परित्यज्य विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे इति द्वन्द्वसमासः । तयोविशिष्टयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम् । द्वयो-र्भावो द्वितैव द्वैतम् ।**

न द्वैतमद्वैतम् । अद्वैतमभेदः । विशिष्टयोरद्वैतम् विशिष्टाद्वैतम्। सूक्ष्मचिदचिदात्मक-शरीरविशिष्टस्य कारणस्य ब्रह्मणः स्थूलचिदचिदात्मक-शरीरविशिष्टस्य कार्यस्य च ब्रह्मण ऐक्यम् इति तात्पर्यम्

वैष्णव संप्रदाय के अनुसार दर्शन की व्युत्पति है, **दृश्यते जीवजगज्जगदीशत्वमनेन इति दर्शनम्** यहाँ जीव, जगत् और जगदीश तीनों को सत्य माना है। **त्रीणि तत्त्वानि चिदचिद्ब्रह्मेति** [विशिष्टाद्वैत दर्शन1/1/3-4] इन्हीं तीनों तत्त्वों को विशिष्टाद्वैत दर्शन में स्वीकार किया है विशिष्टाद्वैत दर्शन के नाम से दो पृथक पृथक सिद्धांत प्राप्त होते हैं एक भगवान् रामानुजाचार्य जी का दूसरा रामानन्दाचार्य जी का ।

भगवान् रामानन्दाचार्य जी अपने प्रिय शिष्य सुरसुरानन्द को बोधायन सम्मत तत्त्वत्रय का प्रतिपादन करते हुए कहते है देह, इन्द्रिय और विविधविषयरूप में भोक्ता जीवों के समक्ष उपस्थित प्रकृति ही अचित् या अचेतन पदार्थ कहलाती है। इससे भिन्न और इसे जानने वाले चेतन जीवात्मा को चित् कहते हैं। यह कभी चाहने पर भी कार्य नहीं कर पाता, कभी वह कुछ चाहता है किन्तु कुछ और ही हो जाता है, ऐसा क्यों? क्योंकि कोई सर्वशक्तिमान् वस्तु उसका नियामक है. यह चेतन जीव से भिन्न उसका अन्तरात्मा परमात्मा है, चेतन और अचेतन सभी पदार्थ उसके अधीन हैं। भोक्ता आत्मा भोग्य प्रकृति और प्रेरक ईश्वर को जानकर-**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा (श्वे.उ. 1.12)।** प्रकृति और जीवात्मा का स्वामी ईश्वर है, यह ज्ञानादि गुणों से पूर्ण है- **प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः । (श्वे.उ.6.16)।** क्षर प्रधान (अचित् प्रकृति) है। अमृत और अक्षर भोक्ता जीव (चित्) है। क्षर और अक्षर जीवात्मा पर शासन करने वाला एक देव ईश्वर है- **क्षरं प्रधानममृताक्षर हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः (श्वे.उ.1.10)** इत्यादि प्रकार से चित्, अचित् और ईश्वर (ब्रह्म) रूप तीन तत्त्वों का प्रतिपादन वेदान्त शास्त्र में किया जाता है। इन तीनों के स्वरूप और स्वभाव भिन्न होने पर भी चित् और अचित् ब्रह्म के विशेषण हैं. इन दोनों से विशिष्ट ब्रह्म एक अद्वैत तत्त्व है। जैसे दण्ड और कुण्डल किसी मनुष्य के विशेषण होते हैं, वैसे चेतन और अचेतन ब्रह्म के विशेषण नहीं हैं क्योंकि दण्ड और कुण्डल कभी अपने आश्रय से पृथक् भी स्थित होते हैं किन्तु चेतन और अचेतन कभी भी अपने आश्रय से पृथक् स्थित नहीं होते। दण्ड और कुण्डल मनुष्य के पृथक्सिद्ध विशेषण होते हैं किन्तु चेतन और अचेतन ब्रह्म के अपृथक् सिद्ध विशेषण हैं। (इस स्थल में यह ध्यान देने योग्य है कि चेतनाचेतन और ब्रह्म के विशेषण-विशेष्यभाव का आधार उनका आत्मशरीरभाव है। चेतन और अचेतन ब्रह्म के शरीर हैं और ब्रह्म उनकी आत्मा। शरीर होने के कारण चेतन और अचेतन ब्रह्म के विशेषण होकर रहते हैं और बड़ा शरीरी आत्मा होने से विशेष्य होकर रहता है।) उक्त विशेषणों से विशिष्ट ब्रह्म एक ही है अतः एक तत्त्व कहा जाता है, यहाँ एक शब्द का प्रयोग उक्त दो विशेषणों से विशिष्ट वस्तु के लिए है अतः प्रकारान्तर से विचार करने पर विशेषण और विशेष्य के बोधक शब्द भिन्न होने से तीन तत्त्व कहे जाते हैं।

1. प्रकृति तत्त्व -

परमात्मा जिससे कार्यों को उत्पन्न करता है, उसे प्रकृति कहते है-**प्रकरोति विकारान् उत्पादयति यस्या इति प्रकृतिः।** प्रकृति के स्वामी परमात्मा प्रकृति से इस विश्व का सृजन करते हैं-**अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्।** (श्वे.उ.4.9)।

पृष्टानामेकमाद्यं त्रिकमपि शृणु तद्भेदतो नामभेदै-
र्नित्याऽज्ञाऽचेतना सा प्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिश्शुभैका।
नानावर्णात्मिकाऽजा त्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया
निर्व्यापारा परार्था महदहमितिसूरुच्यते तत्त्वत्विद्भिः॥
श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर **6**

तत्त्व एकम् एक होते हुए अपि भी प्रकारान्तर से भिन्न भिन्न नामों के द्वारा तीन कहा जाता है। उन तीनों में प्रथम जो प्रकृति तत्त्व है, वह नित्य, अज्ञ, अचेतन, अविकृति और एक है, वह सम्पूर्ण जगत् का कारण

तथा शुभाशुभ है। अव्यक्त शब्द का वाच्य यह प्रकृति नाना वर्ण वाली अजन्मा तीनों गुणों का आधार निर्व्यापारा तथा पर के प्रयोजन के लिए है। यह महद्, अहंकार आदि कार्यों को उत्पन्न करने वाली है. ऐसा तत्त्ववेत्ताओं के द्वारा कहा जाता है। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और आगम के द्वारा प्रतिपादित एक ही तत्त्व परब्रह्म श्रीरामचन्द्र हैं। ये ही चेतन जीव और अचेतन प्रकृति से विशिष्ट अद्वैत तत्त्व हैं।

जिस प्रकार दण्ड और कुण्डल दो विशेषणों से विशिष्ट देवदत्त एक ही होता है, उसी प्रकार जीव और प्रकृति से विशिष्ट तत्त्व एक ही है।

2. जीवतत्त्व

जीवात्मा पूर्व में प्रतिपादित प्रकृति (देह इन्द्रिय, मन, प्राण) और बुद्धि (धर्मभूतज्ञान) से भिन्न, अणुपरिमाण, नित्य, ज्ञाता और ज्ञानस्वरूप है, इसे जीव, आत्मा और प्रत्यगात्मा भी कहा जाता है.

नित्यो ज्ञश्चेतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मो
भिन्नो बद्धाविभेदैः प्रतिकुणपमसौ नैकधा सूरिवर्य्यैः।
श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलभुक्तत्सहायोऽभिमानी
जीवः सम्प्रोच्यते श्रीहरिपदसुमते तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः ।। [श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः7]

श्रीरघुनाथ जी के चरणों में आसक्त मति वाले हे सुरसुरानन्द जीवात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, अजन्मा, नित्य, ज्ञाता (और) ज्ञानस्वरूप (तथा) सदा परमात्मा के अधीन है। वह बद्ध आदि भेदों से विभिन्न प्रकार का है। प्रत्येक शरीर में एक (ही) जीव (विद्यमान) -नहीं है। वह अभिमान करने वाला है। श्रीसीतापति राम के द्वारा व्याप्त शरीरस्थ जीव अपने स्वामी (श्रीराम) के साथ रहते हुए स्वकृत कर्म के फल का भोक्ता होता है. इस प्रकार प्रतिपादित आत्मस्वरूप तत्त्वजिज्ञासुओं के द्वारा जानने योग्य है, ऐसा निष्णात विद्वानों के द्वारा जीवात्मा कहा जाता है।

3. ईश्वर तत्त्व

उत्पत्ति आदि का कारण-सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण परब्रह्म श्रीरामचन्द्र हैं। श्रीरामानन्द स्वामी जी ने लीनमप्यस्ति यस्मिन् इस प्रकार अपि शब्द के प्रयोग से उनके मोक्षकारण होने का भी निरूपण किया है। तैत्तिरीय श्रुति कहती है कि ये सभी प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए प्राणी जिससे जीवनधारण करते हैं और प्रयाण को प्राप्त करते हुए जिसमें लीन हो जाते हैं, उसे जानो, वह ब्रह्म है- **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।** (तै.उ.3.1.1) प्रस्तुत श्रुति ब्रह्म का लक्षण करते हुए यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इस वाक्य से जगत् के प्रति ब्रह्म का उत्पत्तिकारणत्व, येन जातानि जीवन्ति से स्थितिकारणत्व और यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति से लयकारणत्व कहती है। जगत् की उत्पत्ति आदि का कारण ब्रह्म है, उसी से सभी उत्पन्न होते हैं। आत्मा के विना कोई जीवित नहीं रहता। ब्रह्म सभी का आत्मा है, उसी से सभी जीवित रहते हैं। मृत्यु को प्राप्त होते हुए सभी उसी में लीन हो जाते हैं। अभिसंविशन्ति यहाँ पर सम् उपसर्ग एकीकरण अर्थ में है। एकीकृत होकर (अभिन्नत्वेन) जो प्रवेश होता है, वह संवेश अर्थात् प्रलय कहलाता है अथवा प्रयन्ति पद से मोक्ष कहा जाता है और अभिसंविशन्ति पद से प्रलय। ब्रह्म का लक्षण जगज्जन्मादिकारणत्व है।

विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते
सूर्यो यत्तेजसेन्तुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः।
यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः
साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता ॥
श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहुविधविबुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मोऽ-
स्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः।

शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषै-

र्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मनोभ्यामगम्यः॥ [श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः8-9]

शरणागत के अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए भगवान् श्रीराम के चरणारविन्दों की शरणागति ही सबसे सुगम और उत्तम साधन है, इसकी ऐसी अद्भुत महिमा है कि इसमें उच्च कुल में जन्म लेना भी अपेक्षित नहीं है। प्रह्लाद का दैत्य कुल में जन्म हुआ था, विभीषण का राक्षस कुल में तथा सुग्रीव, गजेन्द्र और कालिय का तिर्यक् कुल में। निम्न कुल में जन्म लेने पर भी इन सभी की शरणागति सफल हुई। प्रह्लाद को प्रभु प्राप्त हुए, सुग्रीव को सर्वस्व प्राप्त हुआ और विभीषण को श्रीरामचन्द्र। शरणागति से ही पाण्डवों को राज्य प्राप्त हुआ और कालियनाग की प्राणरक्षा हुई। शरणागति के लिए किसी भी प्रकार का बल अपेक्षित नहीं है। बल के समाप्त होने पर ही गजेन्द्र ने शरण ग्रहण की, उसकी शरणागति की सफलता हुई, उसे भगवत्कैंकर्य प्राप्त हुआ।

हिन्दी फिल्म संगीत निर्देशक सलिल चौधरी 'सुरों का मनमोहक चितेरा'

अमित कुमार सूर्यवंशी*

सलिल चौधरी का जीवन परिचय

बहुमुखी प्रतिभा के धनी फिल्म संगीत निर्देशक सलिल चौधरी का जन्म 19 नवंबर 1922 को पश्चिम बंगाल के दक्षिण स्थित 24 परगना में से एक गाजीपुर नामक गाँव में हुआ था (इनका जन्म वर्ष विवादित है और अधिकतर 1923 या 1925 बताया जाता है)। भारत की महानतम संगीत प्रतिभाओं में से एक सलिल चौधरी न केवल एक संगीतकार बल्कि एक कवि और लेखक, एक प्रतिभावान अरेंजर होने के साथ-साथ एक कुशल बाँसुरी, इसराज, पियानो वादक भी थे । उनके संगीत में भारतीय लोकधुनों के साथ रवीन्द्र संगीत ही नहीं बल्कि पश्चिमी शास्त्रीय संगीत एवं सामाजिक परिदृश्य का अद्वितीय सामंजस्य देखने को मिलता है। यही खासियत उन्हें अपने समवर्ती संगीतकारों से एक अलग पहचान प्रदान करती है।

उन्होंने लगभग 13 से अधिक भाषाओं में संगीत निर्देशन का कार्य किया, जिसमें 75 से अधिक हिन्दी फिल्में, 41 बंगाली, 27 मलयालम फिल्मों के अलावा कुछ तेलुगु, कन्नड़, मराठी, तमिल, असमिया और ओडिया फिल्में हैं।

सलिल चौधरी जी के पिता, डॉ ज्ञानेंद्र चौधरी असम में काजीरंगा के पास हाथीकुली चाय बागान में चिकित्सा अधिकारी थे अतः सलिल चौधरी जी का बचपन असम के चाय बागान क्षेत्र में बीता । सलिल चौधरी जी की रुचि बचपन से ही संगीत में थी। सलिल अपने पिता के पश्चिमी शास्त्रीय संगीत के संग्रह तथा असम और बंगाल के लोक गीतों के बड़े संग्रह को सुनते बड़े हुए। उनकी इस रुची ने ही उन्हें काफी प्रभावित किया और उनकी संगीत की समझ को आकार दिया। उन्होंने हाई स्कूल की पढ़ाई हरिनवी डीवीएएस हाई स्कूल से तथा बंगबासी कॉलेज जो कोलकाता विश्वविद्यालय से संबद्ध है से स्नातक की उपाधि प्राप्त की । धुन बनाने का कार्य तो उन्होंने कॉलेज में अध्ययन करते हुए ही शुरू कर दिया था एवं इसी समय में उनके सांगीतिक और राजनीतिक विचारों का विकास हुआ।

बाल्यावस्था से ही उनमें संगीत की गहन रुचि थी। वे बांसुरी, हारमोनियम और इसराज वाद्यों के कुशल वादक थे तथा छह वर्ष की उम्र में अपने बड़े भाई से पियानो कि शिक्षा आरंभ की। सलिल जब अपने मामा के गाँव में निवासरत थे तब 1943 में उन्होंने एक बड़े किसान विद्रोह को समीप से देखा और वे उस आंदोलन से जुड़ गए । किसान आंदोलन के लिए गीतों को लिखना शुरू कर दिया । एम.ए. की पढ़ाई के दौरान 1944 में बंगाल में अकाल पड़ जाने से कई लोगों की जान चली गई यह अकाल मानव निर्मित था इस त्रासदी ने उनके विचारों पर गहरा प्रभाव डाला जिसके परिणामस्वरूप वे इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ गये और उसके सक्रिय सदस्य बन गये जिसके बाद उनके नाम से गिरफ्तारी वारंट निकला और कुछ समय तक उन्हे सुंदरबन क्षेत्र में भूमिगत रहना पड़ा। इस दौरान भी उन्होंने गीत और नाटक लिखने का कार्य जारी रखा। उनका पहला जनप्रिय गीत ''बेचारपोटी तोमर बिचार'' था। 1945 में भारतीय राष्ट्रीय सेना के मुकदमों के दौरान उन्होंने इस गीत की रचना की जो लोक जागरण का संदेश देती थी तथा कीर्तन की धुन पर केंद्रित थी।

सलिल चौधरी के संगीत जीवन की यात्रा पर बंगाल के सांस्कृतिक वातावरण तथा रवीन्द्र संगीत का गहरा प्रभाव था। उन्होंने बंगाली गीतों में एक विशेष तरह की शैली सृजित की, जिसमें जनजीवन की संवेदनाएँ, सामाजिक मुद्दे और कलात्मक प्रयोगशीलता का समावेश था। उन्होंने अपने अनेक बंगाली गीतों को हिन्दी फिल्म में प्रयुक्त किया और हिंदी फिल्म संगीत को नई राह प्रदान की। इन गीतों की खासियत यह थी कि वे केवल आनंद प्राप्ति तक सीमित नहीं थे, बल्कि उनमें सामाजिक और मानवीय संवेदनाओं की गहन अभिव्यक्ति भी मिलती है।

सलिल चौधरी ने बीथोवेन और अन्य यूरोपीय संगीतकारों का अध्ययन किया और उनसे वे काफी प्रभावित थे। उन्होंने भारतीय संगीत में पश्चिमी शास्त्रीय संगीत जैसे हार्मोनी, मॉड्यूलेशन, पॉली-रिदम तथा जटिल ऑर्केस्ट्रेशन जैसे तत्वों का अपनी

* शोधार्थी, गायन विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़

रचना में सफल प्रयोग किया । सलिल चौधरी के संगीत में भारतीय संगीत और पाश्चात्य संगीत का ऐसा मधुर संगम नजर आता है जो उसे समय के तात्कालिक फिल्म संगीत निर्देशकों के संगीत में प्रायः कम ही नज़र आता हैं ।

फिल्म दो बीघा ज़मीन (1953) से सलिल चौधरी ने हिन्दी फिल्म जगत में अपनी एक अलग पहचान बनाई इस फिल्म का उद्देश्य लोक मनोरंजन के साथ समाज का वास्तविक चित्रण और जनहित के विषय से जुड़ा हुआ था । "**धरती कहे पुकार के**" जैसे गीतों में उन्होंने लोक चेतना और सामाजिक प्रेरणा तथा इसी प्रकार "**अजब तेरी दुनिया**" जैसे गीतों में भक्ति और विरोध की भावनाओं का अद्वितीय समन्वय देखने को मिलता है।

फिल्म *मधुमती* (1958) और *परख* (1960) में उनकी संगीत प्रतिभा ने उन्हें नई उचाईयों पर पहुँचाया। **"आजा रे परदेसी", "मिला है किसी का झुमका", "टूटे हुए ख्वाबों ने" तथा "जंगल में मोर नाचा"** जैसे गीत उनकी विविधतापूर्ण रचनाशीलता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन गीतों में शास्त्रीयता, लोकसंगीत, भावनात्मक गहराई तथा आधुनिक संगीत के प्रयोगों का अद्भुत उदाहरण दिखाई देता हैं।

सलिल चौधरी के संगीत निर्देशन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि उनका संगीत केवल मनोरंजन का साधन न होकर लोगों में बौद्धिक संवाद, सामाजिक जागरूकता और मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम था। उन्होंने अपने संगीत के द्वारा समाज में व्याप्त विसंगतियाँ, जीवन की चुनौतियाँ और जीवन के विविध पक्षों को स्वर प्रदान किया। यही कारण है कि उनके गीतों में नवीनता, गहराई और कलात्मकता का विशेष अनुभव होता है; जो श्रोता के चित्त को स्वतः ही आकर्षित करते हैं। फिल्म जगत के महान संगीत निर्देशक सलिल चौधरी का निधन 5 सितंबर 1995 को हुआ । उनकी मृत्यु फिल्म संगीत जगत के लिए एक बड़ा सदमा और भारत के लिए एक बढ़ी क्षति थी ।

सलिल चौधरी द्वारा निर्देशित प्रसिद्ध फ़िल्मी गीत **"ओ शाम आई रंगों में रंगी हुई"** की संगीत स्वरलिपि जो कि कहरवा ताल (8 मात्रा) में निबद्ध है –

x				0			
1	2	3	4	5	6	7	8
					सां	सां	निध
					ओ	शा	ऊ
प	ध	ध	–	–	–	–	–
आ	ऽ	यी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
निप	धनि	ध	प	म	ग	पम	गग
ऽऽ	ऽऽ	रें	गी	में	ऽ	ऽऽ	ऽऽ
रे	–	रे	ग	न	प	–	–
ऽ	ऽ	रें	गी	हु	ई	ऽ	ऽ
–	–	प	प–	ध	नि–	सां	रें
ऽ	ऽ	पा	यल	वा	यल	मे	रे
रें	रेंगं	सां	–	मंगं	मंगं	रें	सां
पीं	ऽऽ	वो	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	मैं	ऽ
नि	सां	नि	ध	ध	नि	ध	धध
वो	ई	बाँ	धो	ला	के	न	ईऽ
म	ध	–	धध	प	सां	सां	निध
न	ई		होऽ	ऽ	ओ	शा	ऊ
प	ध	ध	–	म	प	–	धध
आ	ऽ	यी	ऽ	न	ई		होऽ
प	सां	सां	निध	प	ध	ध	–
ऽ	ओ	शा	ऊ	आ	ऽ	यी	ऽ



इस गीत में मुख्य रूप से गिटार, वायलिन, चलो, बांसुरी, मंडोलिन, तबला, कांगो, ढोलक, ट्रामपेड इत्यादि वाद्यों के साथ एक पूरा आर्केस्ट्रा प्रयोग मे लिया गया है। इस गाने में A# maj d# maj. F maj G# maj कार्ड का उपयोग किया गया है।

पूर्व संगीत यह गीत संध्या समय में प्रकृति की सौन्दर्य और आत्मिक अनुभूतियों को व्यक्त करता हैं पूर्व संगीत का आरंभ फिल्म के दृश्य को ध्यान में रखते हुए बनाया गया हैं जिसमें नायिका नौका बिहार करते हुए गीत को गा रही हैं। नाविक नौका को जिस गति से चला रहा हैं मानो वह गीत की लय को प्रदर्शित कर रहा हो शाम के समय को ध्यान में रखते हुए गीत का संगीत तैयार किया गया हैं। गीत की शुरुआत संतूर वाद्य से गई हैं।

मुखड़ा

स्थायी ''ओ शाम आई रंगों में रंगी हुई'' पंक्ति गीत में भाव-केंद्र है। यहाँ शाम शब्द से तात्पर्य प्रकृति का दृश्य से नहीं, बल्कि नायिका की मनःस्थिति के प्रतीक रूप में माना गया है। लता जी ने पाँवों शब्द में बहलावा अंग का बहुत सुंदर उपयोग किया है। भारतीय साहित्य में शाम को प्रेम, स्मृति, और प्रतीक्षा का प्रतीक माना गया है। गीत में भी नायिका इसी भाव में दिखाई देती हैं। लता मंगेशकर का मधुर और कोमल गायन इस अनुभूति को प्रभावशाली बनाता है। गीत का मूल भाव शृंगार और शांत रस पर आधारित हैं।

मध्य संगीत

मध्य संगीत में ट्रम्पेट, कांगो, बांसुरी, स्ट्रिंग्स, पियानो का एक मधुर ऑर्केस्ट्रेशन किया गया है जो शाम के समय, प्रकृति के सौंदर्य को विभिन्न रंगों के माध्यम से बिखेरता हुआ प्रतीत होता है। मध्य संगीत को सलील जी ने अंतरे के संगीत से भिन्न शैली में प्रस्तुत किया है तथा अंतरे को पुनः श्रृंगार रस के भाव से अलंकृत कर प्रस्तुत किया है।

प्रथम अंतरे की शुरुआत में नायिका के श्रृंगार और भावनात्मक आकांक्षाओं को मेजर माइनर कॉर्ड्स का उपयोग करते हुए उसके कोमल भाव को बनाए रखते हुए प्रस्तुत किया गया है। बासुरी का फिलर गीत के भावों को और अधिक उजागर करता है। ''पायल'', "चुनरी'', "कंगना'' और ''बिंदिया'' जैसे प्रतीक भारतीय स्त्री की सौंदर्य एवं संवेदना का परिचायक हैं। दृश्य में ये प्रतीक नायिका के मन के सपनों और उसके सौंदर्य को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ श्रृंगार का तात्पर्य केवल बाहरी सौंदर्य नहीं, बल्कि प्रिय के प्रति समर्पण और मिलन की उम्मीद का माध्यम बन जाता है।

गीत के मध्य-संगीत में सलिल चौधरी के संगीत बनाने की कार्यशैली स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। गीत में मुख्य धुन के साथ काउंटर-मेलोडी एवं पश्चिमी हार्मोनी का प्रयोग गीत को और अधिक मधुर एवं आकर्षक बनाता है।

दूसरे अंतरे में गीत का वह भाग है, जहाँ भावनाएँ और अधिक समृद्ध होकर स्थिर रूप लेती हुई प्रतीत होती हैं। गीत का स्वर अधिक आत्मिक और चिंतनशील हो जाता है। यहाँ नायिका श्रृंगार के साथ अपने सपनों और आशाओं को स्वर देती है। सांगीतिक दृष्टि से दूसरा अंतरा पहले अंतरे की तुलना में और अधिक संतुलित और अंतर्मुखी है। वर्णनात्मक से अनुभूतिपरक, भावों में मन की एकाकी तल्लीनता, स्मृति या प्रतीक्षा का संकेत मिलता है। गीत का मुखड़ा और पहला अंतरा शाम के बाह्य सौंदर्य और वातावरण को चित्रित करते हैं तथा दूसरा अंतरा अधिक आंतरिक और आत्मीय भावों को प्रकट करता है। दूसरे अंतरे से मुखड़ा जब वापस आता है तो वह पहले से और अधिक भाव लेकर आता है। धुन अब भी वही है जो और अधिक गहरी और अर्थपूर्ण लगने लगती है। यही एक सफल फिल्मी गीत संरचना का संकेत है जो सलिल चौधरी को बाकी संगीत निर्देशकों से अलग बनाता है।

संदर्भ सूची

Agarwal, Vijay. *Cinema Aur Samaj*. Delhi: Diamond Books, 2021.

Agnihotri, Ram Awatar. *Social and Political Study of Modern Hindi Cinema: Past, Present, and Future Perspectives*. New Delhi: Commonwealth Publishers, 1990.

Ranade,Ashok Da.*Hindi FIlm Song Music Beyond Boundaries*. New Delhi:Promilla &Co.,Publishers, 2006.

कुलदीप। सिन्हा. *फिल्म निर्देशन* . नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2007.

जावेद और नसरीन मुन्नी कबीर अख़्तर. *सिनेमा के बारे में: जावेद अख़्तर से बातचीत*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन , 2016.

मृत्युंजय, ed. *समकालीन सृजन: हिंदी सिनेमा का सच (विशेषांक)*. कलकत्ता: समकालीन सृजन, 1997.

यादव, वीरेंद्र सिंह. *शताब्दी की दहलीज पर भारतीय सिनेमा*. नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशंस, 2012.

विनोद दास. *भारतीय सिनेमा का अन्तःकरण*. मेधा बुक्स, 2012.

लोककथा और लोकगाथा में अंतर संबंध

नम्रता अलेन्द्र*
डॉ. दीपशिखा पटेल**

भूमिका :–

लोक की रचनाओं में, उनके अनुभव और पारंपरिक ज्ञान परिलक्षित होते हैं, अपने आस–पास के वातावरण और अनुभव एवं बुजुर्गो से मिले ज्ञान ही उनके रचनाओं के अभिन्न अंग होते हैं उनकी वांचिक परम्परा पीढ़ीयों से जुड़ी होती है जो लोक संस्कृति का निर्माण करती है। लोक की रचनाओं में लोकगीत, लोकनृत्य, लोकशिल्प, लोक कथा, लोकगाथा इत्यादि लोक संस्कृति के रूप में विद्यमान है। इन सभी में लोककथा एवं लोकगाथा का भी विशेष स्थान है।

(1) लोककथा का स्वरूप :–

लोककथा वह है, जो कहने की प्रक्रिया द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरित होती है। मनुष्य अपने जन्मकाल से ही सृजनशील और भविष्यवादी रहा है, वह अपने मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार के कल्पनाओं से और जीवन के अनुभवों से मनोरंजक और शिक्षाप्रद कथाओं का निर्माण करता है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार :– ''लोककथा शब्द मोटे तौर पर प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यव्हृत होता रहा है, जो मौखिक या लिखित परम्परा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते रहे हैं।''

लोक कथाओं की प्रमुख विशेषताएँ :–

(1) प्रेम का अभिन्न पुट।
(2) अश्लील श्रृंगार का अभाव।
(3) मनुष्य की मूल–प्रवृत्तियों से निरंतर साहचर्य।
(4) मंगल कामना की भावना।
(5) सुख और संयोग में कथाओं का अन्त।
(6) रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता।
(7) उत्सुकता की भावना, तथा।
(8) वर्णन की स्वाभाविकता।

(2) लोकगाथा का स्वरूप :–

लोकगाथा एक कथा की काव्यात्मक प्रस्तुति है, वह काल्पनिक नहीं होती अपितु पूर्व में घटित किसी घटनाक्रम का वर्णन होता हैं। लोकगाथा में कथ्यात्मक और काव्यात्मक दोनों का मिश्रण होता है, कथा का वह स्वरूप जिसे लोकधुनों में संजोकर परोसा जाता है। लोकगाथा कहलाती है।

''लोक गाथा एक विशिष्ट प्रकार का लोक काव्य होता है। सामान्यतः जिसकी उत्पत्ति किसी प्ररेणादायक अथवा प्रसद्धि वस्तुगत घटना या जीवन में घटित कार्यकलाप से होती है। किसी घटना और उसके प्रमुख पात्रों के जीवन, उनकी समस्याएँ, उनके प्रेम, क्रोध, संकट, संघर्ष, बलिदान, प्राक्रम और मार्मिक भावनाओं के वर्णन से बढ़ते–बढ़ते वह रोचक कथा एक भाव प्रधान गाथा बन जाती है।''

लोक गाथाओं की प्रमुख विशेषताएँ :–

(1) रचयिता का अज्ञात होना।
(2) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव।
(3) संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
(4) स्थानीयता का प्रचुर पुट होना।
(5) मौखिक प्रवृत्ति।
(6) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अत्यन्ताभाव।

---

* शोधार्थी
** शोध निर्देशिका

(7) अलंकृत शैली की अविद्यमानता।
(8) रचयिता के व्यक्तित्व का अनस्तित्व।
(9) लम्बा कथानक।
(10) टेक पदों की पुनः पुनः आवृत्ति।

(3) लोककथाओं का वर्गीकरण

(1) प्राचीन कालीन वर्गीकरण :–

प्राचीन आचार्यों ने लोक कथाओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया है।

(1) कथा और (2) आख्यायिका।

मनुष्य की कल्पनाओं व जीवन के अनुभवों से निर्मित कहानी लोककथा कहलाती है। और जिस कहानी का आधार ऐतिहासिक होता है, वह आख्यायिका बन जाती है। जैसे बाणभट्ट का हर्ष चरित जिसमें सम्राट हर्ष वर्धन का जीवन चरित्र लिखा गया है।

आनंद वर्धनाचार्य ने कथाओं के तीन भेदों का उल्लेख किया है :– (1) परिकथा (2) सकल कथा और (3) खण्ड कथा। परिकथा वह है जिसमें केवल इतिवृत्त मात्र हो। सकल कथा में बीच से फल–पर्यन्त कथा का सन्निवेश उपलब्ध होता है। खण्ड कथा एक देश प्रधान होती है।

(2) डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण :– डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने वर्ण्य विषय की दृष्टि से लोक कथाओं को 6 वर्गो में वर्गीकृत किया है :–

(1) उपदेश कथा (2) व्रत कथा (3) प्रेम कथा
(4) मनोरंजन कथा (5) सामाजिक कथा (6) पौराणिक कथा

(i) उपदेश कथा :– लोककथाओं में अधिकांश कथाएँ उपदेशात्मक होती है। पंचतंत्र और हितोपदेश में अनेक कथाएँ उपदेशात्मक है। जिसका लक्ष्य उपदेश देना है।

(ii) व्रत कथा :– व्रत कथाओं में लोक की ऐसी कथाएँ प्रचलित है जो धार्मिक अनुष्ठान के दौरान कही या सुनाई जाती है जैसेः– गनगौर, करवा चौथ, हरितालिका तीज, कमरछठ इत्यादि।

(iii) प्रेम कथा :– प्रेम कथाओं में माता–पुत्र, भाई–बहन, पति–पत्नि के प्रेम का वर्णन होता है।

(iv) मनोरंजन कथा :– मनोरंजन कथाओं का उद्देश्य मनोरंजन करना होता है जिसमें लोकोक्ति और पहेलियाँ संबंधी कथाएँ भी हो सकती है।

(v) सामाजिक कथा :– समाज का चित्रण ही सामाजिक कथा के अन्तर्गत आता है। जिसमें समाज की न्याय विषयक कहानियाँ भी हो सकती है।

(vi) पौराणिक कथा :– पुराणों से संबंधित कथाएँ पौराणिक कथा कहलाती है जैसे राजा हरिशचन्द्र, नल–दम्यन्ति इत्यादि।

(4) लोकगाथाओं का वर्गीकरण :–

(1)डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार :–

(1) प्रेम कथात्मक गाथाएँ
(2) वीर कथात्मक गाथाएँ
(3) रोचांच कथात्मक गाथाएँ

(2) प्रो.कीट्रीज के अनुसार :–

(1) चारण गाथाएँ (2) परमपरागत गाथाएँ

(1) चारण गाथाएँ :– मध्यकालीन यूरोप में चारण लोग राजदरबारों में गाथाएँ गाकर अपनी आजीविका चलाते थे। इन गाथाओं को चारण द्वारा गाये जाने के कारण इनका नाम चारण गाथाएँ पड़ा।

(2) परम्परागत गाथाएँ :– जो चिरकाल से गायी जा रही है, जिसका प्रचार–प्रसार आज भी अक्षुण बना हुआ है ये गाथाएं ही परम्परागत गाथाओं के रूप में गायी जाती है।

(5) लोककथा और लोकगाथा में अंतर :–

	आधार	लोककथा	लोकगाथा
(i)	प्रस्तुति	वाचिक परंपरा	गायन परंपरा
(ii)	विषय	कल्पना, शिक्षाप्रद, सामान्य जीवन	ऐतिहासिक प्रसंग, वीरता, प्रेम
(iii)	विस्तार	छोटी कथानक	लंबी कथानक
(iv)	शैली	सीधा, सरल, कथानक	भावपूर्ण, काव्यात्मक
(v)	रूप	गद्यात्मक	पद्यात्मक, गीतात्मक

(6) लोककथा एवं लोकगाथा का अंतर संबंध :– लोककथा और लोकगाथा में कई अंतर होने के साथ इन दोनों विधाओं में गहरा संबंध है, जैसेः–

(i) मौखिक परंपरा का आधारः– लोककथा और लोकगाथा दोनों ही पीढ़ी दर पीढ़ी लोगो का द्वारा सुनाई और गाई जाती है, इन दोनों की उत्पत्ति लोक से हुई है दोनों का आधार लोकजीवन की मौखिक परंपरा पर आधारित है।

(ii) लोक जीवन का चित्रण :– दोनों ही विधाओं में लोक की संस्कृति, रहन–सहन, खान–पान, दैनिक जीवन का चित्रण होता है, जिसमें लोक की भावनाओं की भी अभिव्यक्ति होती है।

(iii) कल्पना और यथार्थ का मिश्रण :– लोककथा में कल्पना पर आधारित कथाएं होती है, जबकि गाथा में यथार्थ के साथ कल्पना का मिश्रण होता है। ये दोनों सामाजिक जीवन की सच्चाईयों को रोचक ढंग से प्रस्तुत करते है।

(iv) एक दूसरे में रूपातंरण :– कभी–कभी लोककथाएँ भी लोकगाथाओं के रूप में परिवर्तित हो जाती है, जब किसी कथा को गाथा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो उसमें भावनात्मक विस्तार जुड़ जाता है।

(v) आधुनिक संदर्भ में महत्व :– आधुनिक समय में जहाँ तकनीकी विकास तेजी से हो रहा है वहीं लोककथा और लोकगाथा का महत्व भी बना हुआ है ये हमारी संस्कृति को संरक्षित रखने में सहायक है। विभिन्न मंचों पर व उत्सवों पर इसका प्रस्तुतीकरण होता है।

निष्कर्ष :–

अंततः कहा जा सकता है, कि लोककथा एवं लोकगाथा एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं। जो लोक साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ है। दोनों का उद्देश्य सामूहिक चेतना का विकास एवं सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण करना है। इन दोनों विद्याओं के बीच का अतंर–संबंध यह दर्शाता है कि दोनों विद्याएं एक–दूसरे के पूरक है।

इस प्रकार लोककथा एवं लोकगाथा हमारी संस्कृति की धरोहर है। वर्तमान और भविष्य के लिए मार्गदर्शक भी है।

संदर्भ सूची :–

1. श्रीवास्तव, राजेश 'शम्बर'. *लोक साहित्य सिद्धांत और परंपरा.* नई दिल्लीः संजय प्रकाशन, 2011.
2. श्रीवास्तव, राजेश 'शम्बर'. *लोक साहित्य.* भोपालः कैलाश पुस्तक सदन, 2010.
3. उपाध्याय, कृष्णदेव. *लोक संस्कृति की रूपरेखा.* इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन, 1988.
4. शर्मा, श्रीराम. *लोक साहित्य.* आगराः साहित्य सरोवर, 2020.
5. जैन, श्रीचन्द्र. *लोक–कथा विज्ञान.* प्राक्कथनः डॉ. सत्येन्द्र, जोधपुरः राजस्थानी ग्रन्थागार, 2016.
6. उपाध्याय, कृष्णदेव. *लोक संस्कृति की रूपरेखा.* इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन, 2009.
7. यादव, वीरेन्द्र सिंह. *लोक साहित्य एवं लोक संस्कृतिः परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य.* नई दिल्लीः ओमेगा पब्लिकेशन्स, 2012.

चिकित्सा पद्धति की सामाजिक–ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. धीरेन्द्र कुमार गुप्ता*

चिकित्सा क्रिया के सदैव दो पक्ष महत्त्वपूर्ण होते हैं जिसे चिकित्सक एवं रोगी के सन्निहित सम्बान्धों के रूप में देखा जाता है जिसमें चिकित्सक तथा समाज का व्यापक प्रभाव एक-दूसरे को प्रभावित करता है। इस प्रकार चिकित्सा विज्ञान समूहों में अन्तरनिहित अनेक उपसमूहों के विविध अन्तर सम्बन्धों का प्रतफल माना जाता है। यदि हम चिकित्सा विज्ञान के इतिहास को औषधि विज्ञान के इतिहास से जोड़कर देखें तो यह चिकित्सा विज्ञान के इतिहास को पूर्ण रूप से व्याख्यातित नहीं करता है क्योंकि औषधि के गुणों से केवल रूग्णता पर नियन्त्रण पाया जाता है जबकि रोग से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रघटना को सामाजिक दृष्टिकोण के रूप में देखना महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में चिकित्सक रोगी अन्तरसम्बन्ध एक महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय रहा है।[1] प्रसिद्ध चिकित्सा समाज वैज्ञानिक **सिगरिस्ट** का कथन है कि चिकित्सक रोगी के मध्य अन्तःसम्बन्धों में विभिन्न प्रारूप चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण होता है।

सम्प्रत्यात्मक जटिलताओं के माध्यम से चकित्सकों की भूमिका और रोगी की आकांक्षाओं के अनुरूप भूमिका का निर्धारण किया जाता है क्योंकि रोगी की भूमिका चिकित्सक की कार्य पद्धति की विशिष्टताओं पर आधारित रहता है। सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण चिकित्सा व्यवस्था एवं उससे सम्बन्धित क्षेत्र में विविध प्रकार के परिवर्तन के स्वरूप को देखा जा सकता है जिसमें यह परिवर्तन इंगित करता है कि प्राकृतिक संरचना और परम्परागत सांस्कृतिक संरचना समूह के जीवन जीने की सम्पूर्ण शैली है। अतः सांस्कृतिक परिवर्तन चिकित्सकीय परिवर्तन को व्यापक स्तर पर प्रभावित करता है।

रोगी की सामाजिक भूमिका : कुछ विशिष्ट, जन्मजात और वन्ध्या वैश्विक आपदाओं को छोड़कर कोई भी व्यक्ति जन्म से रोगी नहीं होता है। कोई भी व्यक्ति रूग्णता और रूग्ण व्यवहार को अपने सामाजिक विकास के अन्तर विकास में सम्मिलित नहीं करता है क्योंकि रूग्ण व्यवहार अस्थाई होता है जिसकी चर्चा अथवा जिसके दवाओं को रोग के अन्तरवस्तु के रूप में देखा जाता है।

अस्वस्थता की अवधारणा : शरीर के किसी अंग द्वारा क्रिया-कलाप के रूप में जब कोई विघ्न अथवा किसी प्रकार की समस्या का अनुभव होता है तो वह अवस्था अस्वस्थता की अवस्था कहलाती है। जब तक व्यक्ति कार्य करने में पूर्णतः सक्षम है, वह स्वस्थ कहलाता है। **फेवर्ग** ने मानव जाति चिकित्सा शब्द का प्रयोग अस्वस्थता की संस्कृति के अध्ययन के लिए किया है अर्थात् चिकित्सा से सम्बन्धित स्वास्थ्य की दशाओं का अध्ययन घटना के रूप में करना चाहिए।[2]

वेवस्टर ने अस्वस्थता की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि ''यह एक ऐसी दशा है जिसमें असुविधा का अनुभव किया जाता है। इसमें शारीरिक क्रियाओं का प्रभावित होना, असंतुलित होना, अव्यवस्थित होना माना जाता है। वस्तुतः यह स्वास्थ्यता की दशा से दूर होने की स्थिति है।[3]

लेविस का कथन है कि अस्वस्थता का सम्बन्ध जीवन व उसकी प्रदर्शन की क्षमता पर आधारित रहता है।[4]

डश का मत है कि व्यक्ति द्वारा मानसिक और बौद्धिक रूप से विपथन होना, शारीरिक रूप से अक्षम होना अथवा शरीर के अंगों द्वारा नियमित रूप से कार्य न करना अस्वस्थता की स्थिति को माना जाता है।[5]

आदिम समाजों में अस्वस्थता की स्थिति को दुर्भाग्यपूर्ण अथवा प्रकृति के रूप में श्रापित माना जाता है जबकि स्वस्थता को सांस्कृतिक प्रघटना और दैविय अनुकम्पा माना जाता है। स्वास्थ्य को सांस्कृतिक आधार पर अस्वस्थता तथा स्वस्थता की स्थिति के रूप में परिभाषित किया जाता था। इस दशा में यदि किसी समूह में जो बीमारी सामान्य रूप से पाई जाती है उसे प्रायः सामान्य अवस्था मान लिया जाता है। बीमारी अथवा अस्वस्थता को चेतावनी का संकेत माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के सामाजिक नियमों का न्याय के परिप्रेक्ष्य

* विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग जी. एस. एस. पी. जी. कालेज कोईलसा, आजमगढ, उ. प्र.

में उल्लंघन करता है तो ऐसी दशा में उस व्यक्ति को दण्ड देने वाले कर्म विविध प्रकार के बीमारियों के माध्यम से उस पर आक्रमण करते हैं और इन बीमारियों के हो जाने के पश्चात् अथवा इनसे सम्बन्धित लक्षण दिखने पर भी ऐसे व्यक्ति समाज से अपनी सामान्य प्रतिष्ठा को खो देते हैं।[6]

अस्वस्थता के कारण : रोग कारक विज्ञान मानव समुदाय में पारम्परिक चिकित्सा के महत्त्व को दर्शाता है क्योंकि यह पारम्परिक चिकित्सा की क्रियाविधि की देन मानी जाती है। आदिम अवधारणा में यह माना जाता है कि रोग के कारण सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारकों से प्रभावित होते हैं। यह विचारधारा इस मान्यता पर आधारित होता है कि विभिन्न प्रकार की शारीरिक अवस्था के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष ही उत्तरदायी होते हैं।

आदिम समाजों में व्यक्तियों का विश्वास पारम्परिक और लोक चिकित्सा दो चिकित्सा पद्धतियों में विभाजित पाई गई हैं जिन्हें अलौकिक क्रिया व प्राकृतिक चिक्तिसा पद्धति के रूप में माना जाता है। रोग अथवा अस्वस्थता के कारक इन्हीं दो कमर्कों पर आधारित होते हैं। अलौकिक कारकों में वह कर्मक शामिल होते हैं जो प्रकृति से पृथक होते हैं जिनका हम अवलोकन नहीं कर पाते हैं जबकि प्राकृतिक कर्मकों में प्रकृति द्वारा प्रदत्त विकल्पों की सहायता को लेकर मानव के स्वास्थ्य की संन्तुलित अवस्था को बनाने का प्रयास किया जाता है।

रीवर ने अस्वस्थता सम्बन्धित मान्यताओं के सन्दर्भ में दिये जाने वाले दृष्टिकोणों को तीन भागों में विभाजित किया है जिन्हें सांस्कृतिक (जादुई), धार्मिक, प्राकृतिक मॉडल के रूप में दिया गया जिसमें सांस्कृतिक (जादुई) विकास के रूप में बीमारियों की जादूगरों द्वारा अलौकिक शक्तियों के जादूई कार्य से समाधानित करने को माना, वहीं धार्मिक क्रिया विधि में बीमारियों का कारण अलौकिक शक्तियों के प्रयोग अथवा हस्तक्षेप को बताया। इसके विपरित प्राकृतिक स्वरूप में बीमारियों का कारण प्राकृतिक व वातावरण को माना गया तथा इनसे प्राप्त विकल्पों के माध्यम से बीमारियों का समाधान भी निकालने का प्रयास किया गया।[7]

स्वास्थ्य के सन्दर्भ में यह माना गया है कि मानव के साथ ही साथ अन्य जीव-जन्तु स्वास्थ्य से सम्बन्धित विविध प्रकार के औषधियों को विकल्पों के रूप में चयनित करते हैं। मानव समुदाय के जीवन स्तर में स्वास्थ्य को सबसे महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में माना गया है। स्वास्थ्य की अवधारणा को रोग की अनुपस्थिति के आधार पर मापा जाता है। स्वास्थ्य एक ऐसी अवधारणा है जिसमें शारीरिक तथा मानसिक दशाओं को भौतिक जगत् से समायोजन बनाये रखने की स्थिति के रूप में देखा जाता है। स्वास्थ्य के सन्दर्भ में **वेबस्टर** का कथन है कि ''स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसमें शरीर, मन, आत्मा विशेष रूप से किसी शारीरिक बिमारी के अस्तित्व से मुक्त होना है।''[8]

विश्व स्वास्थ्य संगठन (1957) के अनुसार ''मानव शरीर रचना की वह स्थिति अथवा विशेषता है जिसमें दिये गये वातावरणीय, आनुवंशिकीय और पर्यावरणीय अवस्थाओं में समुचित रूप से शरीर रचना द्वारा कार्य किया जाता है।''[9]

मानव व रोग अथवा अस्वस्थता का सम्बन्ध एक-दूसरे से आरम्भ से चला आ रहा है। यहाँ हम कह सकते हैं कि स्वस्थता मानव की उत्पत्ति से जुड़ा रहा है जबकि रूग्णता एक आधारभूत समस्या है जिसका प्रत्येक मानव समुदाय द्वारा सामना किया जाता है। प्रत्येक समुदाय अपनी सांस्कृतियों के माध्यम से रोग उपचार की पद्धति का निर्माण कर प्रयोग करते हैं।[10]

अस्वस्थता के निदान की प्रक्रिया : साधारणतः यह माना जाता है कि अस्वस्थता अथवा रोग की दशा में इसके उपचार हेतु विविध प्रकार की पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि रूग्णता के समय व्यक्ति अथवा उससे सम्बन्धित समूह उसके शीघ्र स्वस्थ होने के लिए ज्ञान के आधार पर सभी विधाओं को स्वीकार करता है। वह वनौषधि से लेकर कर्मकाण्ड व जादूई पद्धतियों तक का प्रयोग करता है।

पारम्परिक चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत विश्वास चिकित्सा में ऐसा समावेश होता है कि व्यक्ति उन्हीं क्रियाओं को प्रभावी मानता है जिसके माध्यम से उत्पन्न ऐसी समस्याओं को देखता है। जैसे प्रेत आत्माओं का प्रभाव अन्ध बाधायें। वह पारम्परिक चिकित्सा व्यवस्था में इस प्रकार की चिकित्सा को लेकर **दैवीय सिद्धान्त** को अपनाता है। यह दैवीय सिद्धान्त समसामयिक परिवेश पर आधारित होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा व्यवस्था के निवारण हेतु जीव-जन्तुओं से लेकर प्राकृतिक वनौषधि तक का प्रयोग रोग के निदान हेतु किया जाता है। मानव ज्ञान के विकास और प्रभावों को भौतिक आवरण के रूप में परिवर्तित करने के विधि को प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के रूप में देखा जा सकता है। यह एक व्यवस्थित विधा को सकारात्मक रूप से दर्शाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत रूग्णता से सम्बन्धित पक्षों को विश्लेषण के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह पद्धति पूर्णतः प्राकृतिक विकल्पों के द्वारा ही स्वास्थ्य समस्याओं को समाधानित करने का विकल्प प्रस्तुत करता है।

आधुनिक विज्ञान के आविष्कार के परिणामस्वरूप रोगों के परीक्षण, निदान हेतु विविध प्रकार के अनुसंधान किये जा रहे हैं। यह अनुसंधान मानव जाति के कल्याण और स्वास्थ्य से सम्बन्धित दशाओं को सुधारने के लिए दिये जा रहे हैं। चेतना के विकास एवं संचार की सुविधाओं के सरलीकरण के पश्चात् आधुनिक चिकित्सा पद्धति से उपचार कराने वाले लोगों में विशेष उत्साह तथा विश्वास की सबसे बड़ी संख्या पाई जाती है। चिकित्सा समाजशास्त्र के अन्तर्गत आधुनिक चिकित्सा के कार्य पद्धति को विशिष्ट उच्च संस्कृति के रूप में स्वीकार्य किया गया है। यही कारण है कि ज्ञान और विज्ञान के समन्वय के पश्चात् आधुनिक चिकित्सा पद्धति को व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ विकल्प मानते हुए इसका उपयोग प्रथम प्राथमिकता के रूप में चयनित अध्ययन क्षेत्र में भी कर रहे हैं।

औषधि एवं संस्कृति : आधारभूत रूप में रोग जैविक एवं शारीरिक घटना है किन्तु इसका संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। **प्रोफेसर किंग** का कथन है कि ''रोग वह घटना है जो सामाजिक सन्दर्भ में उत्पन्न होता है और व्यक्ति का एक-दूसरे व्यक्ति के साथ अन्तर्सम्बन्ध को प्रत्यावर्तित करता है।''[11] अतः ऐसी दशा में व्यक्ति का पर्यावरण से सम्बन्ध रोग की उत्पत्ति में सहायक होता है। किसी भी समाज में संस्कृति के प्रत्येक स्तर के लोगों की अभिवृत्ति रोग एवं उसके निदान हेतु एक-दूसरे की संस्कृति से अपेक्षाकृत भिन्न होता है। प्रायः समूहों की संस्कृति उसकी अधिवृत्ति पर आधारित होता है। ऐसी दशा में वह रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मतों, अन्तरक्रियाओं के प्रारूपों आदि से बधा रहता है क्योंकि संस्कृति के यह तथ्य परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से उससे सम्बन्धित सदस्यों के क्रिया-कलापों को प्रभावित करते हैं। शंकुल समाज में भी चिकित्सा व्यवसाय अनेक प्रकार के प्रतिमानों एवं ढोंगों से निर्धारित होता है जिससे लोगों के व्यवहार एवं अभिवृत्तियों को जानने में सुविधा प्राप्त होती है।

भारत वर्ष में संस्कृति का औषधि के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। धार्मिक विश्वास, अन्धविश्वास आदि औसत भारतीय के जीवन संस्कृति का प्रमुख अंग है। यह सनातन धर्म के अनेक उपभाग होने के कारण लोगों के क्रियाकलापों में समरूपता दिखाई पड़ती है किन्तु यह समरूपता विशेष स्मस्या के रूप में चिन्हित किया जाता है क्योंकि यह क्रियाकलाप संस्कारों के कारण भिन्न होता है। अतः क्रियाकलापों के आधार पर समरूपता का दर्शन कठिन होता है। परम्परागत मूल्यों एवं प्रतिमानों के कारण लोग आज भी रोगों से मुक्त होने के लिए उनका अनुसरण करना श्रेयस्कर समझते हैं। वैज्ञानिक आधार न होने पर भी मनोवैज्ञानिक संतुष्टि के लिए व्यक्ति विभिन्न रोगों से मुक्त होने के लिए इन संस्कृतियों को, रूढ़ियों को, अन्धविश्वासों को अपनाता है। ऐसी विचारधारा के परिणामस्वरूप आधुनिक चिकित्सा को समाज के सबसे गरीब वर्ग तक पहुँचाने में विशेष कठिनाई होती है। चिकित्सा समाज विज्ञान प्रमुख रूप से आधुनिक औषधियों, भारतीय संस्कृति और स्वास्थ्य सम्बन्धित मूल्यों के अन्तःसम्बन्धों का अध्ययन करता है।

चिकित्सक औषधि और सामाजिक व्यवस्था : चिकित्सा औषधि का सबसे प्रभावी पक्ष सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित होता है। सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक व्यवसायिकरण एवं राजनैतिक संरचना, उपचार, नियंत्रण एवं रोग के निवारण से सम्बन्धित होता है। भारतीय समाज व्यवस्था में स्थानीय संस्कृति एवं स्वजन सम्बन्धों का व्यापक प्रभाव पड़ता है इसलिए चिकित्सकीय व्यवस्था की कार्यविधि को समझने के लिए सामाजिक व्यवस्था को समझना अतिआवश्यक माना जाता है। यहाँ व्यक्तियों के रोग एवं उससे सम्बन्धित अभिवृत्ति का निर्धारण उस सामाजिक पर्यावरण में होता है जिससे उसका आगमन होता है अथवा जिस व्यवस्था का वह सदस्य होता है।

सामाजिक स्तरीकरण और औषधि : मनुष्य का स्वास्थ्य उस सामाजिक स्तरीकरण से अन्तःसम्बन्धित होता है जिसमें उसका प्रादुर्भाव रहता है। अतः स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं का सम्बन्ध सामाजिक स्तरीकरण से होता

है। प्रत्येक सामाजिक स्तरीकरण में रहन-सहन के ढंग, व्यवहार की प्रक्रिया अभिवृत्त एवं निषिधियाँ होती है जो व्यक्ति को एक विशिष्ट सामाजिक स्तरीकरण में रहने के योग्य बनाती हैं। व्यक्ति के रोगों का उपक्रम एवं निदान सामाजिक स्तरीकरण की उस व्यवस्था से निर्धारित होता है जिसका वह अंग होता है। भारत में परम्परागत रूप से देखा जाय तो आर्थिक रूप से कमजोर लोगों में तपेदिक, छुआछूत आदि के रोगों की अधिकता पाई जाती है जबकि उच्च आय वर्ग में मधुमेह, उच्च रक्त चाप और हृदय सम्बन्धित बीमारी अधिक पाई जाती है। इस प्रकार विभिन्न स्तरीकरण का व्यवसायिक, वैचारिकी, सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति, जीवन का ढंग आदि स्वास्थ्य तथा हीलिंग की कला से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होता है। औषधि अपने आप में एक पृथक् घटना नहीं है किन्तु सामाजिक स्तरीकरण से मिल कर यह स्वास्थ्य सम्बन्धित घटकों को विशेष रूप से प्रभावित करता है।

सामाजिक परिवर्तन और औषधि : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सामाजिक व्यवस्था के सभी उप-व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है। इस दशा में चिकित्सा क्षेत्र भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह गया है क्योंकि नवीन अन्वेषणों, नवीन व्यवहार, नवीन विचार, मूल्यों और तकनीकों में आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप समाज में विशिष्ट औषधीय अवस्था को प्रभावी बना रहा है जिससे समाज में पूर्व से अस्तित्व में रही औषधियों में विघटन या असन्तुलन उत्पन्न करके उनके स्थान पर नवीन औषधियों को प्रस्थापित करता है। इस प्रकार चिकित्सा समाज वैज्ञानिक स्वास्थ्य सम्बन्धित संस्थाओं के संरचना एवं प्रकार पर सामाजिक संरचना के प्रभावों को विशेष रूप से स्वीकार किया जाता है क्योंकि यह स्थिति स्पष्ट करती है कि सामाजिक परिवर्तन के प्रक्रिया के परिणामस्वरूप तत्सम्बन्धित समस्या के अध्ययन में सहयोग प्राप्त होगा तथा परिवर्तित समाज व्यवस्था में चिकित्सा व्यवस्था से अन्वेषण, समायोजन अभिग्रहण आदि को भी प्रभावी बनाता है। इस प्रकार का अध्ययन केवल परिवर्तित परिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रभाव का ही अध्ययन नहीं करता अपितु इसमें सामाजिक सांस्कृतिक गतिशीलता का प्रभाव एवं जननांकिकी परिवर्तन भी चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्याओं में सन्निहित होता है।

परिवार एवं औषधि : भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि में रोगी और उसके परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है क्योंकि भावनात्मक रूप से जुड़े परिवार में रोगी के कष्ट को परिवार का कष्ट माना जाता है। अधिकांश रोगों का सम्बन्ध परिवार की सामाजिक आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि से प्रभावित होता है। परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर सदस्यों की साक्षरता, आहार, परिवार के मित्रों, पड़ोसियों एवं पारिवारिक संरचना तथा परिवार से सम्बन्धित अन्य सम्बन्धों को रोग और उसके निदान के प्रमुख पक्ष के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि यह रोग के निदान की प्रकृति के निर्धारण में सहयोग प्रदान करते हैं जो परिवार के सदस्यों द्वारा सम्भावित होता है जिसमें परिवार का पर्यावरण इस बात का संकेत करता है कि परिवार के विशिष्ट व्यक्तियों विशेषकर वृद्ध और रोगियों को किस प्रकार से रखना चाहिए। भारतीय परिवार में अधिकांश सदस्य एक-दूसरे से अन्तःसम्बन्धित होते हैं जिसमें सामान्य अभिवृत और दृष्टिकोण परिवार के पर्यावरण से प्रभावित तथा निर्धारित होता रहता है। रोगी द्वारा रोग के लक्षणों को स्पष्ट करने में परिवार की भी स्पष्ट छाप देखने को मिलती है।

चिकित्सा की पद्धतियाँ : प्राचीन काल से लेकर अब तक मानव में निरोगी काया के लिए हर सम्भव प्रयास किये। इस प्रयास के अन्तर्गत वह प्रकृति के साथ समन्वय स्थापित करके चिकित्सा और चिकित्सा व्यवस्था के रूपों में प्रभावी परिवर्तन को अपनाता है। आरम्भ में जहाँ वह स्वास्थ्य के लिए प्रकृति को सन्तुलित करने का प्रयास करता है वहीं इस विधा में वह प्रकृति और विज्ञान के समन्वय से औषधि विकास को जोड़ता है क्योंकि चिकित्सा में न केवल रूग्ण व्यक्ति के रूग्णता का उपचार किया जाता है बल्कि उसकी जैविय संस्कृति, सामाजिक तथ्य और उसके व्यवहार के परिवर्तन को अस्वस्थता से सम्बन्धित कारकों से जोड़कर देखा जाता है। पारम्परिक चिकित्सा को मानव जाति की चिकित्सा मानते हुए इसका विवरण और समाजशास्त्रीय अध्ययन विश्लेषण व निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

1. पारम्परिक चिकित्सा – पारम्परिक चिकित्सा को मानव चिकित्सा अथवा लोक चिकित्सा के नाम से जाना जाता है। यह चिकित्सा व्यवस्था आदिम समाज से प्रचलित मान्यताओं तथा प्रक्रियाओं पर आधारित रही है और वही उसकी विषय वस्तु रही है। प्रारम्भिक चिकित्सा पद्धति का प्रमुख आधार सामुदायिक होता है जिसे वहाँ की सामाजिक संरचना और संगठन द्वारा मान्यता प्राप्त रहता है। यह चिकित्सा पद्धति विशेष रूप से रोग और

स्वास्थ्य से सम्बन्धित मान्यताओं व सामाजिक सांस्कृतिक विश्वासों पर आधारित होात है जिसका उपयोग सदस्यों द्वारा सरल ढंग से किया जा सकता है क्योंकि ऐसी पद्धति की सफलता समुदाय विशेष की पूर्णतः आस्था और विश्वास पर आधारित होता है। यह विश्वास और आस्था प्रथागत स्वरूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को निरन्तर हस्तान्तरित होते रहते हैं।

पारम्परिक चिकित्सा पद्धति समुदाय विशेष द्वारा उनके परिवेश के अनुकूल अस्वस्थता एवं उनके प्रबान्ध तथा उपचार की विधि एवं सामाजिक सांस्कृतिक विश्वासों के माध्यम से विकसित किये जाते हैं। यह विकास सामाजिक संगठन और समुदाय के सांस्कृतिक प्रतिमानों के मनोवैज्ञानिक संरचना से अन्तर्सम्बन्धित रहता है। **अखवीमेट (1942)** ने अपने अध्ययन के दौरान यह पाया की पारम्परिक चिकित्सा की व्यवस्था मानसिक उपचारों के गुणों से सम्बन्धित होता है जबकि पाश्चात्य समाज में माना जाता है कि पारम्परिक चिकित्सा प्रणाली वह है जो अपाश्चात्य है तथा अशिक्षितों के मध्य अशिक्षित परम्परा के रूप में विकसित है। सामाजिक रूप में इसका पक्ष केवल जादुई है जो अत्यन्त सीमित है जिसमें मनोवैज्ञानिक रोगों के मानकों के अन्तःसांस्कृतिक सम्बन्धों की शीलता पर बल दिया जाता है।

किसी भी समुदाय के व्यक्तियों के मध्य स्वास्थ्य की चर्चा वैचारिक रूप से प्रभावशाली होती है। **विलियम (1955)** का मत है कि ''रोग एक आधारभूत समस्या है जिससे प्रत्येक मानव समाज को सामना करना पड़ता है और प्रत्येक मानव समुदाय रोगों से बचने एवं उपचार हेतु एक चिकित्सकीय और औषधीय पद्धति का निर्माण कर लिया जाता है।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. मार्टी ई. वानेज, फैलिक्स (सम्पादित 1960) : हेनरी ई सिगरिस्ट ऑन द हिस्ट्री ऑफ मेडिसीन, न्यूयार्क, एम.डी. पब्लिकेशन 1960, पृ0 24-26.
2. वेवर, टी. (सम्पादित 1968) : ऐसेज ऑन मेडिकल एन्थ्रोपालोजी, साऊथरन एन्थ्रोपालजिकल सोसाइटी, प्रोसेसिंग नं0 1 एथेन्स गा, यूनिवर्सिटी ऑफ जार्जिया प्रेस.
3. लेविस, ए. (1976) : कल्चर, डिजिज एण्ड हेल्थ; स्टडी इन मेडिकल एन्थ्रोपालजी न्यूयार्क, मैकमिलन पब्लिशिंग कम्पनी, आई.एन.सी.
4. डस, जे. (1986) : द कान्सेप्ट एण्ड ट्रिटमेन्ट ऑफ डिजिज इन ट्राइबल ओरिसा, इन ट्राइबल हेल्थ सोशियोकल्चरल डाइमेन्संस, नई दिल्ली, इण्टर-इण्डिया पब्लिकेशन.
5. झा, पी.आर. एवं बरनवाल डी.एस. (1996) : सामाजिक मानवशास्त्र भाग-1, दिल्ली, पीयूष पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
6. यादव, ए. एण्ड ए.एन. शर्मा (1994) : हेल्थ कल्चर एण्ड हेल्थ सिकिंग विहेवियर अमागसेमी नोमेडिक लोहार-गडेरिया ऑफ मेलथन टाऊन ऑफ सागर डिस्ट्रीक मध्य प्रदेश, जर्नल ह्यूमन, इको 13(6) 431-435.
7. रीवर, डब्लू.एच.आर. (1924) : मेडिसीन मैजिक एण्ड रिलिजन लन्दन; किगन पावेल.
8. विश्व स्वास्थ्य संगठन (1957) की वार्षिक रिपोर्ट प्रतिवेदन स्वास्थ्य के सन्दर्भ में.
9. कैडिल विलियम (1955) : अपलाइड एन्थ्रोपोलजी इन मेडिसीन, इन एन्थ्रोपोलाजी टू डे (ए.आर. क्रोबर सम्पादित) चिकागो, यूनिवर्सिटी ऑफ चिकागो प्रेस.
10. विलियम (1955) : नान वेस्टर्न मेडिकल सिस्टम अनुवल रिव्यू एनथ्रोपालजी, वाल्यूम-II पृष्ठ संख्या315-348.
11. ए.एल. श्रीवास्तव (1983) : चिकित्सा समाज विज्ञान की रूपरेखा, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ.
12. ह्यूज, सी.सी. एण्ड फास्टर (1978) : मेडिकल केयर इथनोमेडिसीन, इन इण्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्स वाल्यूम-01 (एल. डेविड, सिल्स सम्पादित), न्यूयार्क; द मैकमिलन कम्पनी एण्ड द फ्री प्रेस।
13. फी. वर्ग (1973) : मेडिकल एन्थ्रोपोलजी, इन वाइनियल रिव्यू ऑफ एन्थ्रोपोलजी (वी.जे. सिंगल सम्पादित) सेन्टफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
14. जोशी,पी. (1986):हेल्थ डिजिज एण्ड सोशल स्ट्रक्चर : देयर रिलेशनशिप इन नागालैण्ड विलेज, इण्डियन एन्थ्रोपोलाजी 16.
15. झा, पी.आर. एवं डी.एस. बरनवाल (2003) : सामाजिक मानवशास्त्र, भाग-1, पीयूष पब्लिकेशन, नई दिल्ली.

भारतीय लघुचित्रकला मे स्त्री स्वरूप : सौन्दर्य व भावाभिव्यक्ति का कलात्मक निरूपण

प्रियांशा सोनी*
डॉ. अनीता कनौजिया**

अमूर्त -

लघु चित्रकला, भारतीय चित्रकला के समृद्ध इतिहास की एक ऐसी चित्रण परंपरा रही है, जो अपने सूक्ष्म रूपाकारों के माध्यम से भावों की सजीव अभिव्यक्ति करती है। इस कला परंपरा में स्त्री सदैव केंद्रीय तथा आधारभूत तत्व रही है। स्त्री रूप की उपस्थिति लघु चित्रकला का प्राणमयी तत्व है, जिसके माध्यम से चित्र दृश्य में पूर्णता की अनुभूति होती है। समस्त शैलियों में कलाकारों ने चित्रण में स्त्री को केवल एक विषय वस्तु के तौर पर ही महत्व नहीं दिया अपितु भावाभिव्यक्ति का प्रतीक मानकर देवी, प्रेमिका, नायिका, रानी, दासी आदि विविध रूपों के माध्यम से प्रेम, विरह, भक्ति, करुणा और आध्यात्म जैसे भावों को चित्रों में निरूपित किया। बाह्य सौंदर्य की ओर दृष्टिपात किया जाए तो स्त्री के अंग-प्रत्यंग, नयन नक्श, देह भंगिमाओ, हस्त मुद्राओं, वस्त्र अलंकारों से सुसज्जित रूप के द्वारा चित्रों में लावण्य का मनमोहक छिड़काव किया गया है। प्रस्तुत शोध लेख में लघु चित्रकला के अंतर्गत स्त्री रूप के चित्रण के महत्व को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया है, यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि भारतीय लघुचित्रों मे स्त्री, सौन्दर्य के निरूपण तथा विविध मनोभावों के रूपायन की सशक्त प्रतीक रही है, नारी रूप के अभाव में किसी भी रस की अभिव्यक्ति संभव नहीं है।

कुंजी शब्द - लघुचित्रकला, स्त्री, सौन्दर्य, अष्ट नायिका, नारी स्वरूप, भाव, रस , अभिव्यक्ति, प्रेम

प्रस्तावना

लघु चित्रकला शैली चित्रण की एक ऐसी विधा है जिसमें सूक्ष्म कला कौशल, भावाभिव्यक्ति, रूप लावण्य, सशक्त विषयांकन, रंग कौशल, उचित संयोजन आदि सभी विशेषताओं का अद्भुत समन्वय दृष्टिगत होता है। ये चित्र आकार में लघु होते हैं, परंतु प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से वृहद संसार को समेटे हुए हैं। 12वीं शती के दौरान व्यापक रूप से लघुचित्रों का सृजन प्रारंभ हो गया, यह सृजन परंपरा लगभग 18 वीं सदी तक अनवरत रही। इस कला का प्रारंभिक स्वरूप पश्चिमी भारतीय ताड़पत्र शैली के रूप में प्राप्त होता है। इसके पश्चात इसका समृद्ध रूप राजस्थानी, मुगल, दक्षिणी, पहाड़ी आदि क्षेत्रीय शैलियों में परिलक्षित होता है, जिनमें प्रेम, धर्म, भक्ति, अध्यात्म, राजसी वैभव, लोक जीवन, पौराणिक आख्यान, लोक संस्कृति आदि विविध विषयों तथा भावों का निरूपण किया गया।

समग्र रूप से लघु चित्रकला का अवलोकन करने पर स्त्री रूप का सृजन इस चित्रकला की प्रधान विषय वस्तु रही है। स्त्री रूप के माध्यम से चित्रकारों ने सभी विषयों, मनोभावों का प्रस्तुतीकरण सौंदर्यमयी रूपों में किया। जिस प्रकार भौतिक जीवन में स्त्री समस्त सृष्टि की आधारशिला है, उसी प्रकार लघु चित्रकला परंपरा में भी स्त्री के अस्तित्व के बिना कलात्मक संसार अपूर्ण है। भौतिक जगत में स्त्री सृजन का आधार है तथा कलात्मक जगत में भी स्त्री विविध भावों के सृजन का मूर्त आधार है।

* शोधार्थिनी, कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट, लखनऊ, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
मेल आईडी : priyanshasony11@gmail.com, मोबाईल नंबर – 7073959067
** शोध निर्देशिका, कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट, लखनऊ, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

स्त्री 'सौन्दर्य की आदर्श'

लघुचित्रों मे स्त्री के बाह्य स्वरूप पर दृष्टि केंद्रित की जाए तो ज्ञात होता है कि स्त्री को आकर्षक तथा सौन्दर्य तत्वों से युक्त प्रस्तुत किया गया। स्त्री के शारीरिक रूप विन्यास को अत्यंत सूक्ष्मता से अलंकृत करके सदैव आदर्शमयी विन्यास मे प्रस्तुत किया गया, ना तो अत्यधिक दुर्बल ना ही अत्यधिक हष्ट पुष्ट। प्राचीन भारतीय कला दर्शन के ग्रंथों जैसे नाट्यशास्त्र, चित्रलक्षण आदि में मानव रूपों के निश्चित मानदंडों को निर्धारित करके आदर्श रूप, सौंदर्य के मानक तथा मुद्राओं आदि को निर्धारित किया गया । मध्यकालीन अभिलेखों व साहित्य के माध्यम से ज्ञात होता है कि चित्रण प्रक्रिया एक सामूहिक परंपरा थी, चित्र शाला में अध्ययन व अभ्यास के बाद ही कोई चित्रकार निपुण होता था अतएव संभव है कि प्राचीन ग्रंथो से ज्ञान अर्जित करके चित्रकारों ने आदर्श रूपों को कल्पित किया हो। रूपाकारों को यथार्थवादी रूप की अपेक्षा आदर्श सौन्दर्य युक्त कल्पित किया गया । वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एक आदर्श नारी रूप के साथ साथ कहीं स्त्री को अर्धनग्न तथा कहीं कहीं पूर्ण नग्न रूप मे भी प्रस्तुत किया गया है , संभवतः जिसके पीछे कलाकार का उद्देश्य रति भाव को प्रदर्शित करना रहा होगा अथवा राजा के निर्देशानुसार सृजन किया गया हो। ऐसा कोई रस या भाव नहीं था, जो चित्रकार की तूलिका से अछूता रहा हो - प्रेम, विरह, रति, करुणा, उद्वेग, उत्तेजना, शांत, प्रसन्नता आदि सभी प्रकार के भावों को चित्रकारों ने सकुशल निरूपित किया है। चित्रों मे स्त्री के दैवीय रूप (राधा, पार्वती, सीता आदि) से लेकर एक सामान्य नारी रूप (दासी, नर्तकी, सखी आदि) सभी रूपकारों को आदर्श आकार विन्यास के साथ ही रूपायित किया गया।

1. राजस्थानी लघुचित्रकला मे नारी स्वरूप: आलंकरणप्रधान

राजपूत परिवेश में पल्लवित हुई राजस्थानी लघु चित्रकला अपनी विविधता युक्त उपशैलियों के लिए विख्यात है, जिसमें समग्र राजस्थान के बहुविध क्षेत्रीय परिदृश्य का प्रतिबिंब प्रदर्शित होता है। राजस्थानी लघु चित्रकला में नारी के जितने नाना रूपों की झांकी प्रस्तुत होती है उतनी अन्यत्र कहीं भी नहीं होती ,यहां नारी केवल एक विषयवस्तु नहीं अपितु प्रत्येक क्षेत्र के प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक जीवन की प्रतीक है। स्त्री छवि के बहुविध रूपों की ओर दृष्टिपात किया जाए तो राजस्थानी शैली सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होती है, जिनमे प्रमुख नारी स्वरूप रहे - दैवीय व आध्यात्मिक स्वरूप (राधा, पार्वती, सीता आदि), प्रणय मुग्ध आदर्श नारी (मारू या मरवण, बनी ठनी, रागिनियाँ आदि),सामान्य स्त्री स्वरूप (नर्तकी, वादिका, दासी-परिचारिका, सखी आदि)। राजस्थान एक ऐसी सांस्कृतिक धरा है, जहां असंख्य कथाएं, लोकगाथाओ का समृद्ध इतिहास रहा है अतएव स्त्री चित्रों में भी कथा प्रवणता तथा नाटकीयता का भाव प्रदर्शित होता है।

2. पहाड़ी लघुचित्रकला मे स्त्री स्वरूप: लालित्यपूर्ण अंकन

हिमालय की अंचल भूमि मे अवस्थित क्षेत्रों के अंतर्गत पनपी पहाड़ी लघुचित्रकला शैली प्राकर्तिक लावण्य तथा सुरम्य परिदृश्य को चित्रकला मे अभिव्यक्त करने तथा अपनी रमणीय वर्ण योजना व उत्कृष्ट कलात्मक कौशल के लिए सदैव सराहनीय रही है। लघुचित्रकला शैली की वृहद परंपरा मे पहाड़ी लघुचित्रों मे अपार विलक्षणता है, जिसका उत्कृष्ट प्रमाण विशेषतः काँगड़ा शैली के चित्रों में परिलक्षित होता है। इस शैली मे चित्रित स्त्री रूपाकार भी यहाँ के निसर्ग सौन्दर्य से आविष्ट हैं। पहाड़ी लघुचित्रों में स्त्री रूपाकृतियों का अवलोकन करने पर मृदुल सौन्दर्य भाव अनुभूत होता है। यहाँ रूपायित स्त्री रूप की अद्वितीय विशिष्टता है , प्रेम संवेदना का प्रस्तुतीकरण, जो राधा रूप मे अंकित नायिका के चित्रों मे दृष्टिगत होता है, प्रेम मुग्ध अकलुष स्त्री के असंख्य मनोभावों को यहाँ के चितेरों ने अद्भुत कौशल से अभिव्यंजित किया है।

अन्य पक्ष मे हम देखते हैं कि कतिपय चित्रों मे राधा को नग्नावस्था व कृष्ण के साथ रति संयोग (संभोग) मुद्रा मे भी चित्रकारों ने प्रस्तुत किया है , यह प्रश्न मन को उद्वेलित करता है कि सनातन धर्म की आध्यात्मिक परम्पराओ मे राधा को आत्मा से परमात्मा के मिलन तथा हरि की अलौकिक शक्ति का प्रतीक

माना जाता है ना कि भौतिक आस्वादन का अतः राधा को इस प्रकार रूपायित करने के मूल मे चित्रकारों का क्या आशय निहित था? यदि चित्रकार राधा की छवि के माध्यम से भक्ति व आध्यात्म को दर्शाना चाहते थे तो इस रूपावस्था मे निरूपण की क्या आवश्यकता थी और यदि अभिप्राय केवल प्रेम, आकर्षण व रति भाव को प्रदर्शित करना था तो दिव्य स्वरूप राधा के चयन का क्या कारण रहा होगा।

3. मुग़ल लघुचित्रकला मे स्त्री स्वरूप : शाही परिवेश व विलासिता

भारतीय लघुचित्रकला की परंपरा मे जितने व्यापक स्तर पर राजस्थानी व पहाड़ी लघुचित्रकला शैलियों मे स्त्री स्वरूप का निरूपण अवलोकित होता है, तुलनात्मक दृष्टि से मुग़ल चित्रकला मे स्त्री रूपकारों को वह समपन्नता प्राप्त नहीं हुई। मुस्लिम जीवन पद्धति व सामाजिक परिवेश के अनुरूप ही स्त्री की भूमिका लघुचित्रकला के भुवन मे भी संकुचित ही रही साथ ही मुस्लिम पर्दा प्रथा भी लघुचित्रों मे स्त्री की सीमित भूमिका का प्रबल कारण मानी जा सकती है। मुगल कला प्रायः शासक वर्ग, दरबारी जीवन के इर्द गिर्द ही विचरण करती रही है अतएव स्त्री स्वरूपों का चित्रण भी कुछ प्रमुख छवियों तक सीमित रहा है, शाही बेगम के रूप मे राजसी अहंभाव तथा दरबारी नर्तकी, दासी, पृष्ठभूमि मे सहायिका रूपी आदि। अधिकांशतः मुग़ल लघुचित्रकला मे स्त्री मनोरंजन व विनोदप्रद गतिविधियों मे संलग्न दर्शाई गई है जो मुख्य रूप से राजा की परिचारिका के रूप मे है , इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है की मुग़ल काल मे स्त्रियों की क्या अवस्थिति थी।

अन्य लघुचित्रकला शैलियों के विपरीत मुग़ल शैली मे राग रागिनी, नायिका भेद, गोपियों आदि का चित्रण अवहेलित था अतः स्त्री अंकन भावमयी अभिव्यंजन, आध्यात्मिक, रसात्मक प्रस्तुतीकरण से वंचित रहा। शाही बेगम नूरजहां के अर्धनग्न शबीह चित्र, कामुक मुद्रा मे दासी व नर्तकियों का अंकन प्रमुख रूप से भोग विलासिता को ही प्रदर्शित करते हैं। यहाँ स्त्री सत्कृत भावमयी अभिव्यक्ति की अपेक्षा सजावटी व विलासी वस्तु प्रतीत होती है।

4. दक्कनी लघुचित्रकला मे स्त्री स्वरूप : वैभवमयी प्रदर्शन

दीर्घ काल तक विशिष्ट पहचान के अभाव मे मौन धारण की हुई दक्कनी लघुचित्रकला शैली जब अस्तित्व मे आई तो अपने सम्पन्न कलात्मक संसार की गूंज से दर्शकों को स्तब्ध कर दिया। पृथक अवलोकन करने पर विदित हुआ कि यह ईरानी तथा भारतीय दोनों कला शैलियों के प्रभाव से सन्निहित थी। यह दक्षिण भारत का वह क्षेत्र था, जहां गोलकुंडा, बीजापुर, हैदराबाद जैसे समृद्ध व धनाढ्य राज्य अवस्थित थे अतः चित्रकला मे भी यह सम्पन्नता सुस्पष्ट प्रतिबिंबित होती है।

यहाँ निर्मित चित्रों मे स्त्री के अंकन पर दृष्टि केंद्रित की जाए तो दृष्टव्य होता है कि स्त्री निर्भीक व धृष्ट रूप मे प्रदर्शित है , यथा- हुक्का पीते हुए, घुड़सवारी , मैदानी क्रीडा करते हुए, भोग विलास व आमोद प्रमोद की अवस्था मे आदि जो स्त्री के स्वच्छंद जीवन के द्योतक हैं। चित्रकारों ने स्त्री के वैभव को उच्चतम दर्शाने के लिए किंचित चित्रकृतियों मे यूरोपीय वेशभूषाधारी नारी को शाही ठाठ - बाठ युक्त अहमपूर्ण मुद्रा मे बैठी स्त्री के सम्मुख खड़े हुए दर्शाया है। इस शैली के स्त्री निरूपण की एक विशिष्ट ख्याति है योगिनी रूप का अंकन जिसकी धार्मिक श्रद्धा से कोई संबद्धता नही है अपितु आकर्षक व कामनीय नारी की प्रतीक है। बहुविध अवस्थाओ मे रागिनियों के चित्रण स्त्री की सामाजिक स्थिति को अप्रत्यक्ष रूप से दर्शाते हैं। किसी भाव को प्रबल रूप से पुष्ट करने के लिए स्त्री के साथ पशु- पक्षी को भी चित्रित किया गया है , जैसे- तोता, मैना, हिरण आदि।

स्त्री चित्रण: बहुविध भावों का निरूपण

भारतीय लघुचित्रकला भावों का सागर है, प्रत्येक कलाकृति भावों की अभिव्यक्ति का सजीव द्योतक है। भावों के इस सागर मे स्त्री चित्रण सुरम्य लहरों के समान है जो सागर मे भाव रूपी आत्मा का संचार करती है। प्रेम, राग, काम, क्रोध, आध्यात्म, पीड़ा, वियोग आदि सभी भावों के निरूपण के लिए कलाकारों ने स्त्री के

रूप को सृजित किया। बारहमासा, राग रागिनी, नायिका भेद, षडऋतु वर्णन आदि ग्रंथों से आकृष्ट होकर कलाकारों ने इन्हे चित्रकला मे भौतिक स्वरूप प्रदान किया जिनमे केन्द्रीय विषय स्त्री छवि रही।

1. **अष्टनायिकाओ का अंकन** - रीतिकालीन काव्यग्रंथ केशवदास द्वारा रचित रसिकप्रिया में नायिका के आठ प्रकारों की विवेचना की गई है, जिन्हें अष्टनायिका कहा जाता है, इन भावप्रवण अष्ट नायिकाओ से रसास्वादित होकर चित्रकारों ने अपनी कल्पना शक्ति से इन्हे चित्रतल पर साकार किया। प्रेम, काम, क्रोध, वियोग, प्रतीक्षा आदि भावों का अभिव्यंजन प्रमुखतः राधा रूपी प्रेमालीन नायिका की मनमोहक भंगिमाओ व कृत्यों के माध्यम से प्रस्तुत किया। लावण्य की अधिष्ठात्री ये अष्टनायिकाए अधोलिखित है-
    - **वासकसज्जा** - प्रियतम की प्रतीक्षा में रूप सज्जित नायिका
    - **विराहोत्कंठिता** - प्रेमी के अनुपस्थित होने पर व्याकुल नायिका
    - **स्वाधीनभर्तिका** - प्रियतम को वक्ष मे रखने वाली नायिका
    - **कलहान्तरिता-** प्रेमी से कलह करती नायिका
    - **खंडिता** - प्रेमी के अन्य स्त्री के पास जाने से क्रोधित नायिका
    - **विप्रलबधा** - प्रणय के स्थान पर छल का पात्र हुई नायिका
    - **प्रोषितभर्तिका** - जिसका प्रियतम परदेश गया हो वह नायिका
    - **अभिसारिका** - निर्भीक होकर प्रेमी से मिलने वाली नायिका
2. **आध्यात्मिक भाव का प्रस्तुतीकरण** - आध्यात्म दिव्य अमूर्त तत्व जिसे मूर्त रूप में साकार करना भारतीय लघुचित्रकारों की अत्युतकृष्ट उपलब्धि है। हिन्दू धर्म मे राधा, कृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति मानी गई हैं व राधा का प्रेम भौतिक ना होकर अलोकिक व आध्यात्मिक है, चित्रकारों ने राधा के आध्यात्मिक प्रेम को नायिका (राधा) की देह भंगिमाओ मे रूपांतरित करके चित्रों मे पिरोया है। आत्मा का परमात्मा के प्रति आध्यात्मिक प्रेम दर्शाने के लिए कलाकारों ने राधा को भावप्रवण व मनमोहक स्वरूपों मे चित्रित किया।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर रही लघुचित्रकला परंपरा मे नारी की असंख्य छवियों का निरूपण देखा जा सकता है, चित्रकारों ने स्त्री स्वरूप को सदैव भावों की सौंदर्यतम अभिव्यंजना के रूप मे स्वीकृत किया है। जोगीमारा, अजंता, बाघ, बादामी आदि गुहा चित्रों से लेकर मध्यकालीन लघुचित्र व समकालीन युग की आधुनिक चित्रकला तक स्त्री भावों के निरूपण का प्रमुख माध्यम रही है। प्राचीन युग की चित्रकला मे लालित्यपूर्ण स्त्री स्वरूप से लेकर समकालीन युग की सशक्त नारी छवि तक स्त्री चित्रकारों की मुख्य आकांक्षित विषयवस्तु मानी जा सकती है। वेदों और उपनिषदों मे नारी को समाज के अंतर्गत उच्च स्थान प्राप्त था। महर्षी याज्ञवल्क्य की अर्धांगिनी मैत्रेयी तथा विदुषी गार्गी जैसी महान तेजस्वी स्त्रियों को ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। इसी तरह प्राचीन मध्यकालीन लघुचित्रों मे भी कलाकारों ने स्त्रियों को चित्रों मे सम्मानजनक व महत्वपूर्ण स्थान दिया परंतु अपवाद स्वरूप किंचित शैलियों मे स्त्री को मात्र विलासिता की वस्तु के रूप मैं भी अंकित किया गया, नि:संदेह यह कलाकारों व आश्रयदाता शासकों की निजी मानसिकता रही होगी। वर्तमान समय मे भी कलाकार पारंपरिक लघु चित्रकला को आधार बनाकर नवीन तकनीको, माध्यमों, रंग संयोजन, आधुनिक विषयों को कला मे प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनमे नारीवाद विषय से संबंधित चित्रों का प्रचुर मात्रा मे अंकन देखा जा सकता है(Source- *https://share.google/tJWFfBg7DlsR8lDiC)*।

अतः अब तक जिस प्रकार सामाजिक परिवेश के अनुरूप स्त्री ने चित्रकला में स्थान प्राप्त किया उसी प्रकार भविष्य मे भी स्त्री अंकन सामाजिक संदर्भानुसार अनवरत चित्रकला में परिलक्षित होता रहेगा, समय के प्रवाह के अनुसार रूपांतरण के मायने सदैव परिवर्तित होते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ

1. *नीरज, जय सिंह : राजस्थान की चित्रकला और हिंदी कृष्ण काव्य, राज कमल प्रकाशन ,दिल्ली, 1976.*
2. *गैरोला, वाचस्पति : भारतीय चित्रकला, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1990.*
3. *राय, कृष्ण दास : भारत की चित्रकला, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1972.*
4. *गोस्वामी, प्रेमचंद : राजस्थान की लघु चित्र शैलियां, ललित कला अकादमी, जयपुर ,1972.*
5. *चतुर्वेदी, ममता : सौंदर्यशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2017.*
6. *प्रताप, रीता : भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2021.*
7. *Archer, W. G. Indian Paintings from the Punjab Hills: A Survey and History of Pahari Miniature Painting. Vol. 2, Oxford University Press, 1973.*
8. *Beach, Milo Cleveland:The Imperial Image: Paintings for the Mughal Court. Freer Gallery of Art, 1981.*
9. *Randhawa, M.S. : Indian Miniature Painting, New Delhi, 1981.*
10. *Gray, Basil : Rajput Painting, Faber and Faber, London, 1938.*
11. *Gupta, Sheril. "Portraiture of Ashta-Nayikas Described from Rasikpriya in Pahari Style." ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts, vol. 5, no. 5, 2024, pp. 675-684*
12. *Sharma, Mandakini, Ila Gupta, and P. N. Jha. "From Caves to Miniatures: Portrayal of Woman in Early Indian Paintings." Chitrolekha International Magazine on Art and Design, Vol. 6, No. 1, 2016.*

◀◀ ▶▶

स्वर शिल्पी वाग्गेयकार : 'गुरुरंग' पं. भीमसेन शर्मा

भरत बिदुआ*

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की परंपरा को पुष्पित-पल्लवित करने में भरत, मतंग जैसे महान आचार्यों, अनेक महान ऋषियों, ग्रंथकारों, कलाकारों इत्यादि वर्गों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन्हीं में से एक वर्ग वाग्गेयकारों का भी है, जिनका संगीत के संवर्धन में अति महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान शास्त्रीय संगीत का आधार ग्रंथ कहे जाने वाले संगीत रत्नाकर में पं. शारंगदेव ने वाग्गेयकार की परिभाषा, गुण आदि का विस्तृत वर्णन दिया है। वाग्गेयकार की परिभाषा देते हुए पं. शारंगदेव लिखते है कि-

वाङ्मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते ।

वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ॥ (सं. र.-2 पृ 149)

अर्थात वाक् को मातु तथा गेय (संगीत) को धातु कहा जाता है। इन दोनों के निर्माता को वाग्गेयकार कहा जाता है।[1] अतः वह व्यक्ति जो साहित्य तथा संगीत दोनों का उत्तम ज्ञाता व रचनाकार हो, वाग्गेयकार कहलाता है। संगीत रत्नाकर में वाग्गेयकारों के 3 प्रकार बताये गये हैं- उत्तम, मध्यम तथा अधम। उत्तम वाग्गेयकार वह व्यक्ति होता है, जो साहित्य एवं संगीत के ज्ञान के साथ, अपनी रचनाओं को प्रस्तुत करने में भी सक्षम होता है। मध्यम वाग्गेयकार उसे कहा गया है, जिसे कविता का कम, परन्तु संगीत का पूर्ण ज्ञान हो या काव्य व संगीत की सामान्य जानकारी के साथ अनेक रागों में बंदिशों की जानकारी हो। अधम या निम्न वाग्गेयकार उसे कहा गया है, जो कविता करने में निपुण हो, पंरतु उसका संगीत पक्ष कमज़ोर हो।[2]

भारतीय संगीत के इतिहास में अनेक महान वाग्गेयकार हुए हैं जिनमें, अमीर खुसरो, नायक बक्सु, अदारंग-सदारंग, पं. ओमकारनाथ ठाकुर आदि का योगदान उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी मौलिक रचनाओं के माध्यम से संगीत को समृद्ध बनाया तथा आज भी इनके द्वारा निर्मित रचनायें संगीत जगत में बड़े सम्मान के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। आधुनिक काल में पं. भीमसेन शर्मा 'गुरुरंग' का नाम ऐसे ही विशिष्ट वाग्गेयकारों में शुमार है, जिनका योगदान भारतीय शास्त्रीय संगीत में अतुलनीय है।

पं. भीमसेन शर्मा केवल एक संगीत विद ही नहीं, बल्कि एक कुशल गायक, महान गुरु तथा उत्तम शिक्षक हैं। वे उच्चकोटि के रचनाकार एवं कलाकार भी हैं। उन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा का गहन अध्ययन कर अनेक नवीन बंदिशों तथा रागों की रचना की। उनकी रचनाओं में शास्त्रीयता, सौंदर्य, भाव, राग तथा साहित्य का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है।

पंडित भीमसेन शर्मा ने गुरु कृपा से संगीत की साधना कर उसे आत्मसात किया और अपने शिष्यों को अपने ज्ञान से लाभान्वित कर रहे हैं। आपकी रचनाएँ संगीत जगत के विद्यार्थियों और विद्वानों के लिए रत्न कोष के समान हैं। प्रस्तुत लेख में वाग्गेयकार पंडित भीमसेन शर्मा के जीवन, संगीत-साधना, बहुआयामी योगदान का वर्णन किया जाएगा।

जीवन वृतांत एवं शिक्षा-दीक्षा- पंडित भीमसेन शर्मा का जन्म पंजाब के होशियारपुर ज़िले के मुकेरियाँ गाँव में 14 दिसंबर 1936 को एक ब्राम्हण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम पं. अमरनाथ गौढ़ तथा माता जी का नाम बीबी बसंत कौर था। बाल्यकाल में आपका नाम सुतीक्ष्ण था जिसका अर्थ है, अति प्रखर बुद्धि वाला, जिसके आप परिचायक हैं। आपके पिता एक वेदपाठी ब्राम्हण थे तथा संगीत के अनुरागी भी थे। पं. जी के घर में शास्त्रीय संगीत का वातावरण नहीं था, किन्तु आपके पिता संगीत सुनते थे साथ ही भजन आदि भी गाते थे एवं आपकी बड़ी बहन ढोलक बजाती थीं। यहीं से पं. जी के भीतर संगीत का बीजारोपण हुआ। बचपन से आपके परिवार में आध्यात्मिक वातावरण होने के कारण आप भी बाल्यकाल से ही आध्यात्मिक प्रवत्ति के हैं, जो आपके सांगीतिक कार्य में भी देखा जा सकता है।

* शोधार्थी, गायन विभाग, इं. क. सं. वि. वि. खैरागढ़ (छ. ग.)

जब आप 3-4 वर्ष के हुए तब से ही आप तोतली जुबान से भजन गाने का प्रयास करने लगे थे। पं. जी बताते हैं कि उनकी पूज्यनीय माता जी बताया करती थीं कि आप 'हरे रामा, हरे कृष्णा' भजन को 'हले लामा, हले कृष्णा' करके गाने का प्रयास किया करते थे।[3] मंदिरों में आरती तथा भजन-संकीर्तन के दौरान आप साथ में गाने का प्रयास करते थे तथा दीवारों में ताल देकर झूमते थे। पं. जी का पूरा ध्यान वहां चल रहे संगीत पर ही केन्द्रित होता था। इन क्रियाओं से पं. जी के भीतर संगीत ने अपनी अमिट जगह बना ली। जब आपकी बड़ी बहन जो, ढोलक बजाती थी तथा पिता जी कुछ भजन गाते थे तो पं. जी भी साथ में गाने का प्रयास करते रहते थे । इस प्रकार आपके संगीत के संस्कार पकते चले गए व आज आप संगीत की एक महान विभूति के रूप में संगीत जगत को अपना योगदान दे रहे हैं।

पं. जी के पिता जी ने आपके लिए आपकी 7-8 वर्ष की आयु से ही गुरु की खोज प्रारंभ कर दी थी। आपके पिता ने आपको संगीत शिक्षा दिलवाने हेतु अथक प्रयास किए व उसी के फलस्वरूप आपको बटाला के कलाकार पं. प्यारेलाल जी अपने प्रथम गुरु के रूप में प्राप्त हुए। इस समय पं. जी की उम्र 11-12 वर्ष की थी। आप उनके पास जाकर सीखने लगे व संगीत के प्रति आपको गहरी रुचि उत्पन्न हो गई। आपकी गुरु परंपरा बहुत महान रही है। आपके कुल 7 सांगीतिक गुरु हुए जिनके नाम निम्नानुसार हैं-

पंडित प्यारेलाल जी (गायन गुरु, बटाला पंजाब)
पंडित कुंदनलाल अवधूत (गायन गुरु, करतारपुर साहिब पंजाब)
पंडित दिलीप चंद वेदी (संगीत के आदर्श गुरु)
पंडित एल एन गुणे (ग्वालियर, सितार के गुरु)
उस्ताद विलायत खान साहब (सितार गुरु)
उस्ताद अमीर खान साहब (ख्याल गायन के गुरु)
आचार्य के. सी. डी. बृहस्पति (संगीत के दोनों शास्त्र तथा क्रियात्मक पक्ष के गुरु)

आपने गुरु शिष्य परंपरा के साथ-साथ अकादमिक रूप से भी सांगीतिक शिक्षा ग्रहण की। वर्ष 1956 से 58 में आपने प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद, वर्तमान प्रयागराज से गायन में एम. म्यूज़, तथा वर्ष 1964 में सितार से एम. म्यूज़ किया। यहाँ आपके गुरु पंडित एल एन गुणे जी थे, जिनसे आपने सितार की शिक्षा ग्रहण की। आप इलाहाबाद में अध्ययन के दौरान प्रतिदिन 8 से 10 घंटे रियाज़ करते थे। एक दिन वहां के सेक्रेटरी ने आपको बुलाकर कहा कि इतना रियाज़ करते हो कभी गाना भी सुना करो, तब से उन्होंने उस्ताद अमीर खान साहब को सुनना प्रारंभ किया। पंडित जी कहते हैं कि मैंने अमीर खान साहब का मारवा तथा दरबारी सुना और मैं स्तब्ध हो गया। इसी बीच आपने इलाहाबाद में एक कार्यक्रम में उस्ताद विलायत खान साहब का सितार सुना और अत्यंत प्रभावित हुए। पं. जी ने खान साहब के समक्ष सितार सीखने की इच्छा व्यक्त की और 8 वर्षों तक उनके निवास पर जाकर सितार वादन की शिक्षा ग्रहण की। वर्ष 1964 में भारतीय शास्त्रीय संगीत के मूर्धन्य ख्याल गायक उस्ताद अमीर खान साहब ने आपको अपने शिष्य रूप में स्वीकार किया। पंडित जी ने खान साहब से ख्याल गायकी के गुर सीखे। विलंबित ख्याल में स्वरों का लगाव, राग की शुद्धता तथा रागों में मींड का प्रयोग आदि ख्याल के मुख्य तत्वों को पंडित जी ने आमिर खान साहब से ग्रहण किया।

वर्ष 1965 में पंडित जी मुक्तसर साहिब कॉलेज में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए, परंतु उन्होंने गुरुओं के चरणों में जाना नहीं छोड़ा। भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रकांड विद्वान एवं ऋषि आचार्य के. सी. डी. बृहस्पति के आप गंडा बंध शागिर्द रहे हैं। आपने उनके अंतिम समय तक उनसे संगीत के प्रयोग एवं शास्त्र दोनों धाराओं पर ज्ञानार्जन किया। **'गुरुरंग'** उपनाम पं. जी को आचार्य बृहस्पति द्वारा ही आशीर्वाद स्वरुप प्रदान किया गया था।

पंडित जी ने बेला एवं तबला वादन की शिक्षा भी ग्रहण की है। आप गायन, सितार, बेला, तबला तथा हारमोनियम वादन में महारथ रखते हैं। आप अपनी सांगीतिक शिक्षा, ज्ञान, आपके द्वारा संगीत में किए गए कार्यों आदि का श्रेय अपने गुरुजनों को ही देते हैं तथा कहते हैं, कि इस जीवन में सब कुछ गुरु कृपा से ही संभव है।[4]

पंडित जी का सांगीतिक योगदान- पं. जी एक प्रयोगधर्मी व्यक्ति हैं। आप संगीत के शास्त्र तथा प्रयोग दोनों पक्षों के अद्वितीय विद्वान हैं। आपने संगीत के दोनों पक्षों पर अनेक कार्य किए हैं, जिससे संगीत जगत को अत्यधिक लाभ हुआ है। पंडित जी ने संगीत के प्रयोगात्मक पक्ष पर जितना ज्ञानार्जन किया है उतना ही गहन अध्ययन शास्त्रों का भी

किया है। पंडित जी ने अपने गहन अध्ययन, स्वाध्याय एवं आत्म चिंतन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर संगीत के क्षेत्र में अनेक कार्य किये हैं। अध्यापन कार्य के दौरान आपके अनेक शोध लेख-आलेख, रिसर्च पेपर आदि देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आपने संगीत के महत्वपूर्ण तत्त्व- स्वर, राग, ताल, अलंकार, रियाज़ (अभ्यास) की क्रियाओं तथा लयकारी जैसे अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर गहन अध्ययन एवं आत्म चिंतन कर अपनी दो पुस्तकों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण सांगीतिक सामग्री संगीत जगत को समर्पित की है। आपकी प्रथम पुस्तक **'स्वर संवाद'** है, जो मुख्यतः दो भागों में विभक्त की गई है। पुस्तक के प्रथम भाग में संगीत के विद्यार्थियों के लिए स्वर, अलंकार, राग, ताल एवं लयकारी के अभ्यास हेतु अत्यंत कारगर विषय वस्तु प्राप्त होती है तथा द्वितीय भाग में 105 रागों में 131 स्वरचित बंदिशें हैं, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत की ख्याल, ध्रुपद, तराना, तथा लक्षणगीत जैसे महत्वपूर्ण सर्व प्रचलित गायन शैलियों पर आधारित हैं। पंडित जी की द्वितीय पुस्तक **'ख्याल गायकी की पंजाबी बंदिशें'** वर्ष 2024 में संगीत जगत के पाठकों हेतु प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तक में भी संगीत के शास्त्र तथा प्रायोगिक दोनों पक्षों की अत्यंत महत्वपूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध है। इस पुस्तक में मुख्य रूप से ख्याल गायन की पंजाबी भाषा में रचित बंदिशों का संकलन है, जो स्वयं में एक स्वर्ण कोष से कम नहीं हैं। यह दोनों पुस्तकें संगीत के क्षेत्र में ज्ञान की अविरल धारा के समान है अतः इन्हें ज्ञान ग्रंथ कहना तनिक भी अनुचित नहीं होगा।

पं. जी ने ध्रुपद, ख्याल, भजन, गीत, ग़ज़लें, तराने, चतुरंग एवं लोक-संगीत आदि गायन शैलियों की 500 से अधिक रचनायें की हैं। साथ ही आपने अपनी सृजनात्मक सोच से 05 नवीन रागों का भी निर्माण किया है। आपने प्रचलित रागों के साथ-साथ अप्रचलित रागों पर भी अत्यधिक कार्य किया है। आपने अपनी पुस्तकों में 40 से ज़्यादा अप्रचलित रागों में रचनाएँ दी हैं, जो सभी आप द्वारा ही निर्मित हैं।

अब मेरे द्वारा पं जी द्वारा बनाए गए राग, उनके द्वारा रचित बंदिशों तथा अभ्यास हेतु बताई गई कुछ क्रियाओं का संक्षिप्त मे वर्णन दिया जा रहा है, जो अत्यंत मत्त्वपूर्ण है।

पं. जी द्वारा नवनिर्मित राग-

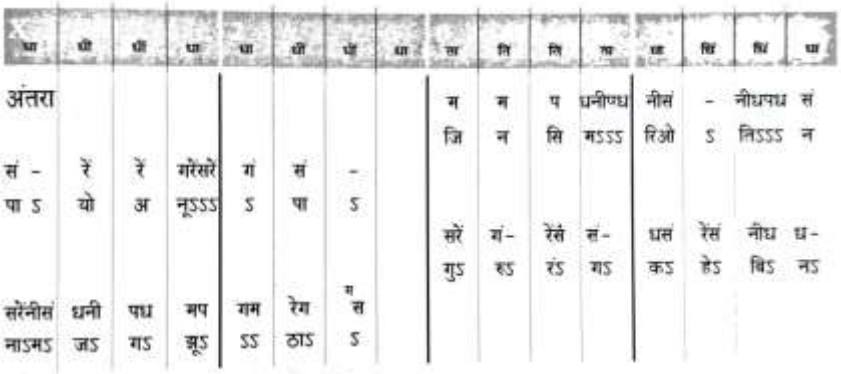
- संयोग (संजोग)
- हंस कल्याण
- मारवा कल्याण
- बृहस्पति तोड़ी
- अमीर खानी तोड़ी

अंतिम दो राग पं. जी ने अपने गुरु आचार्य बृहस्पति एवं उस्ताद अमीर खान साहब को समर्पित किए हैं।

पं. जी द्वारा निर्मित अप्रचलित राग आसा मांड में रचित एक बंदिश-

राग आसा माँड (त्रिताल मध्यलय)

स्थाई								स	गरेसरे	म	म	प	प	धनी	पध
								स	रऽऽऽ	व	व्या	प	क	ओऽ	ऽऽ
सं	नीसंरें	सींरेंगं	सं-	सं-नीसं	रेंसं	नीसंपध	सर्सं								
का	रऽऽ	ऽऽऽ	अऽ	नूऽऽऽ	ऽऽ	ठाऽऽऽ	ऽऽ								
								सं	-	सं	सरें	नीसं	पध	सं	ध
								श	ऽ	ब्द	ध्या	ऽऽ	नऽ	का	ऽ
धनी	पध	पध	मप	मप	गम	रेग	सं स								
नाऽ	ऽऽ	मऽ	का	खूंऽ	ऽऽ	टाऽ	ऽऽ								



अंतरा

								म	म	प	धनीप्ध	नीसं	-	नीधपध	सं
								जि	न	सि	मऽऽऽ	रिओ	ऽ	तिऽऽऽ	न
सं -	रें	रें	गरेंसरे	गं	सं	-									
पा ऽ	यो	अ	नूऽऽऽ	ऽ	पा	ऽ									
								सरें	गं-	रेंसं	स-	धसं	रेंसं	नीध	ध-
								गुऽ	रुऽ	रंऽ	गऽ	कऽ	हेऽ	बिऽ	नऽ
सरेंनीसं	धनी	पध	मप	गम	रेग	ग स									
नाऽमऽ	जऽ	गऽ	झूऽ	ऽऽ	ठाऽ	ऽ									

साहित्य : स्थाई - सरव व्यापक ओंकार अनूठ, शब्द ध्यान का नाम भी खूंठा
अन्तरा - जिन सिमरिओ तिन पायो अनूपा, गुरु रंग कहे बिन नाम जग झूठा।

(शर्मा, 2019, पृ. 59-60)

प्रस्तुत बंदिश पं. जी की पुस्तक स्वर संवाद में प्राप्त होती है। इस बंदिश के साहित्य से पं. जी के आध्यात्मिक भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। बंदिश के संगीत पक्ष का विश्लेषण करने से रचनाकार की उत्कृष्ट सांगीतिक सोच का पता चलता है। बंदिश में रागानुरूप स्वरों के प्रयोग के साथ बंदिश में लयकारी का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है। बंदिश की अंतिम पंक्ति की स्वरावली में स्वरों का अवरोहनात्मक, अलंकारिक प्रयोग वक्र रूप से किया गया है, जो बंदिश में रचनात्मकता तथा वैचित्र्य उत्पन्न कर रहा है। बंदिश में यह सभी प्रयोग पं. जी की बहुआयामी सोच के द्योतक हैं।

पं. जी द्वारा पुस्तकों में वर्णित अभ्यास की कुछ क्रियाओं के उदाहरण-

गिटकरी के अभ्यास की स्वरवालियाँ –

1. रेसा नी़सा रेसा नी़सा। 2. गरे सारे गरे सारे। (शर्मा, 2019, पृ. 31)

मुरकी के अभ्यास की स्वरवलियाँ –

1.रेसानी़, रेसानी़, सानी़। 2. गरेसा, गरेसा, रेसा। (शर्मा, 2019, पृ. 31)

गमक के अभ्यास की स्वरवालियाँ-

1. सससस रेरेरेरे। 2. सससस, पपपप, संसंसंसं, सससस। (शर्मा, 2019, पृ. 32)

पं. जी द्वारा दस थाटों में अभ्यास हेतु बताए गए स्वर प्रस्तारों में से भैरवी थाट में स्वर प्रस्तार-

दस थाटों के स्वर प्रस्तार **5. राग भैरवी**

1.	सरे	गम	पध	नी ध	पम	गरे	सरे	सस
2.	रे ग	मप	ध नी	सनी	धप	मग	सरे	सस
3.	सरे	गम	पध	नीसं	नीध	पम	गरे	सस
4.	रे ग	मप	ध नी	सनी	धप	मग	सरे	सस
5.	ग रे	गम	पध	नीसं	नीध	पम	गरे	सस
6.	गम	पध	नीसं	रेसं	नीध	पम	गरे	सस
7.	गम	पध	नीसं	नीध	पम	गरे	सनी	सस
8.	गम	पध	नीध	नीसं	धप	गरे	सनी	सस
9.	गम	पध	नीसं	ध प	मप	गम	गरे	सस
10.	पम	गम	ध नी	सरें	सनी	धप	मग	रेस

(शर्मा, 2019, पृ. 45)

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त पं. जी ने संस्थागत शिक्षण प्रणाली में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आपने शिमला विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ दीं तथा गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर में भी संगीत संकाय के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे और वहीं से सेवानिवृत्त हुए। आपने अपनी सेवावधि में सैकड़ों विद्यार्थियों को अपने ज्ञान से लाभान्वित किया। आपको हिमाचल प्रदेश के शिमला तथा चंबा आदि क्षेत्रों में भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार का अत्यधिक श्रेय जाता है।

आप संगीत विद, महान कलाकार एवं वाग्गेयकार तो हैं ही साथ ही आप एक महान गुरु एवं शिक्षक भी हैं। आपने संगीत के क्षेत्र में अनेक विद्यार्थियों एवं शिष्यों को शिक्षा प्रदान की है, जो आज देश के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। आप आकाशवाणी के भी नियमित कलाकार हैं। संगीत के क्षेत्र में आपके द्वारा किए गए महान कार्यों हेतु आपको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। इसी कड़ी में आपको भारत सरकार द्वारा वर्ष 2022 में संगीत नाटक अकादमी अमृत पुरस्कार से भी सम्मानित किया।

पंडित जी आज लगभग 90 वर्ष की आयु में भी संगीत साधना में रत हैं तथा आज भी अपनी संगीत-साधना से प्राप्त नवाचारी सोच, प्रयोगधर्मिता एवं कुछ नया करने की चाह में अनेक कार्य कर रहे हैं। आपकी एक तीसरी पुस्तक भी प्रकाशनाधीन है।

अंत में मैं अपने विचारों के माध्यम से यह कहना चाहूँगा कि पंडित जी के संपूर्ण जीवन, उनके कार्यों तथा उनकी कार्यशैली का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि गुरु की कृपा के बिना कुछ भी संभव नहीं है और यदि गुरु की कृपा प्राप्त हो जाए तो संसार का कोई भी कार्य असंभव नहीं है।

संदर्भ सूची -

1. टाक, तेज सिंह। *सुबोध संगीत शास्त्र (भाग–एक)*, लुमिनस बुक्स,वाराणसी, 2021,पृ.138
2. टाक, तेज सिंह। *सुबोध संगीत शास्त्र (भाग–एक),* लुमिनस बुक्स,वाराणसी, 2021,पृ.139
3. पं. भीमसेन शर्मा, साक्षात्कार, चंडीगढ़, 28/09/2022
4. पं. भीमसेन शर्मा, साक्षात्कार, गुरुग्राम, 15/10/2024
5. पं भीम सेन शर्मा. (2019). *स्वर संवाद* (प्रथम सं.). चंडीगढ़: पं। भीम सेन शर्मा.

भारतीय ज्ञान परंपरा में कला, संगीत, संस्कृति एवं लोकपरम्पराएँ

शुभम् दुबे*

भारतीय सभ्यता समकालीन विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध सभ्यताओं में से एक है। इस सभ्यता की विशिष्टता इसकी महान ज्ञान परंपरा में निहित है जिसने सहस्रों वर्षों से मानव जीवन के विविध आयामों का पथ प्रदर्शन किया है। यह ज्ञान परंपरा न केवल बौद्धिक ज्ञान तक ही सीमित है अपितु इसमें कला, संगीत, संस्कृति, दर्शन, आध्यात्मिकता एवं लोकपरंपराओं का अद्भुत समन्वय दिखलाई पड़ता है। यह परंपरा, वेदों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृति शास्त्रों एवं लोक परंपराओं के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होती रही है।[1]

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना न होकर मानव जीवन को संतुलित, सामंजस्यपूर्ण एवं आध्यात्मिक रूप से समृद्ध बनाना है। इस परंपरा में कला, संगीत और संस्कृति को केवल मनोविनोद का साधन न मानकर उन्हें आध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक एकता का माध्यम माना गया है।[2]

भारतीय संस्कृति में कला और संगीत को दिव्यता से जोड़ा गया है। उदाहरणार्थ सरस्वती देवी को ज्ञान एवं संगीत की अधिष्ठात्री माना गया है जबकि नटराज के रूप में भगवान शिव को नृत्य के देवता के रूप में माना गया है। यह दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में कला और आध्यात्मिकता का गहरा सम्बन्ध है।[3]

इसी प्रकार भारतीय लोक परंपराएँ भी इस ज्ञान परंपरा का महत्वपूर्ण भाग हैं। लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं, लोककला और लोक उत्सव भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृति को जीवित रखते हैं। ये परंपराएँ समाज के अनुभव, विश्वास और जीवन मूल्यों के संरक्षण का कार्य करती हैं।[4] परन्तु वर्तमान वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव से कई पारंपरिक कलाएं और लोक परंपराएं लुप्त होने की कगार पर हैं। इसलिए इनका वैज्ञानिक अध्ययन और संरक्षण करना नितांत आवश्यक है।[5]

भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा :–

भारतीय ज्ञान परंपरा का तात्पर्य उस समग्र ज्ञान प्रणाली से है जो प्राचीन भारत में विकसित हुई और जिसने जीवन के विभिन्न आयामों जैसे–धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, संगीत, चिकित्सा, गणित एवं समाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया।[6]

भारतीय ज्ञान परंपरा की जड़ें वेदों में प्रस्फुटित हुई। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद न केवल धार्मिक एवं दार्शनिक विचार के स्रोत हैं अपितु उनमें संगीत, चिकित्सा, खगोल शास्त्र एवं सामाजिक जीवन सम्बन्धी ज्ञान भी प्राप्त होता है।[7] सामवेद को भारतीय संगीत का मूल आधार माना जाता है। इसमें मन्त्रों का गान स्वर और लय के साथ किया जाता था जो उपरान्त में भारतीय शास्त्रीय संगीत की आधारशिला बना।[8]

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान को तीन स्तरों पर समझा जाता है–

- **श्रुति परंपरा**– जो वेदों एवं उपनिषदों के माध्यम से प्राप्त होती थी।
- **स्मृति परंपरा**– जिसमें धर्मशास्त्र, पुराण एवं अन्य ग्रन्थ आते हैं।
- **लोक परंपरा**– जिसमें लोककथाएँ, लोकगीत एवं लोककलाएँ सम्मिलित हैं।

इन तीनों स्तरों का समन्वय भारतीय ज्ञान परंपरा को समग्र और जीवंत बनाता है।[9]

भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण पहलू गुरू–शिष्य परंपरा है। प्राचीन काल में शिक्षा मुख्यतः गुरूकुलों में दी जाती थी। जहाँ गुरू अपने शिष्यों को शास्त्रीय ज्ञान के साथ–साथ जीवन के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की भी शिक्षा देते थे।[10] कला एवं संगीत के क्षेत्र में गुरू–शिष्य परंपरा का भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य के विभिन्न घरानों और परंपराओं का विकास इसी प्रणाली के माध्यम से हुआ।[11]

भारतीय ज्ञान परंपरा में कला :–

भारतीय परंपरा में कला को केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति न मानकर आत्मा की अभिव्यक्ति माना गया है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक, नृत्य और संगीत के सिद्धान्तों का विस्तार से

* शोध छात्र, के0बी0पी0जी0 कालेज, मीरजापुर
Email – shubhamdubey1001@gmail.com

वर्णन है।[12] जिसके अनुसार कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर अपितु शिक्षा, नैतिकता और आध्यात्मिक अनुभव प्रदान करना है। इसमें वर्णित रस सिद्धान्त के अनुसार कला के माध्यम से दर्शकों में विभिन्न भावों की अनुभूति करायी जाती है।[13]

भारतीय कला में सात प्रमुख रस बताए गए हैं– 1– श्रृंगार 2– वीर, 3– करूण, 4– रौद्र, 5– हास्य, 6– भयानक, 7– अद्भुत। बाद में शांत रस को भी जोड़ा गया।[14] यही सिद्धान्त भारतीय नृत्य, नाटक और संगीत की आधारशिला बना।

भारतीय ज्ञान परंपरा में संगीत–

भारतीय परंपरा में यह विश्वास किया जाता है कि संगीत के माध्यम से ईश्वर के अधिक निकट पहुँचा जा सकता है। सामवेद को भारतीय संगीत का मूल स्रोत माना जाता है क्योंकि इसमें मंत्रों का उच्चारण विशेष स्वरों तथा लयों के साथ किया जाता है। भारतीय संगीत में स्वर, लय और ताल का अद्भुत समनवय होता है। स्वरों की संख्या सात है– सा, रे, ग, म, प, ध, नि ।इन स्वरों को संस्कृत में षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत एवं निषाद कहा जाता है।[15]

भारतीय संगीत में राग, स्वर एवं लय का ऐसा संयोजन है जो विशेष प्रकार का भाव अथवा वातावरण सृजित करता है। प्रत्येक राग का एक निश्चित समय और भाव होता है। उदाहरणार्थ कुछ राग प्रातः काल में गाए जाते है जबकि कुछ राग रात्रि में।[16]

भारतीय संगीत का दार्शनिक आधार **'नाद ब्रह्म'** की अवधारणा में निहित है जिसके अनुसार सम्पूर्ण बह्माण्ड ध्वनि से उत्पन्न हुआ है तथा ध्वनि ही ब्रह्म का स्वरूप है। भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार ऊँ (ओम्) को मूल ध्वनि माना जाता है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई है। संगीत इसी दिव्य ध्वनि की अभिव्यक्ति है।[17] यही कारण है कि भारतीय साधकों एवं संतों ने भक्ति एवं ध्यान हेतु संगीत का आश्रय लिया। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, नानकदेव, मीराबाई, चैतन्य
महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, शंकरदेव, नरसी मेहता जैसे संत कवियों ने अपने पदों और भजनों के माध्यम से भक्ति एवं आध्यात्मिकता का सन्देश दिया।

भारतीय शास्त्रीय संगीत मुख्यतः दो परंपराओं में विकसित हुआ हिन्दुस्तानी संगीत एवं कर्नाटक संगीत। हिन्दुस्तानी संगीत मुख्य रूप से उत्तर भारत में प्रचलित है जबकि दक्षिण भारत में कर्नाटक संगीत अधिक विकसित हुआ। हिन्दुस्तानी संगीत में ध्रुपद, खयाल, ठुमरी, टप्पा जैसी गायन शैलियों का विकास हुआ जिसमें ध्रुपद सबसे प्राचीन मानी जाती है। जबकि कर्नाटक संगीत में कृति, वर्नम और पदम प्रमुख गायन रूप है। शास्त्रीय संगीत में सितार, सरोद, वीणा, तबला, मृदंगम, बाँसुरी और शहनाई जैसे वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। जो भारतीय संगीत की विविधता और समृद्धि को दर्शाते हैं।

भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा :–

भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** है अर्थात् सभी प्राणी सुखी हों। यह सिद्धान्त भारतीय संस्कृति में समावेशिता और सार्वभौमिकता को दर्शाता है।[18] भारतीय संस्कृति की सर्वप्रथम विशेषता इसकी विविधता में एकता है। **'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम'** अर्थात् मनुष्य अनेक भाषाएं बोलता है तथा अनेकानेक धर्मों को मानता है। अथर्ववेद की इस आर्ष वाणी से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति की विशेषता इसकी विविधता और समन्वयशीलता में निहित है। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, करूणा, सहिष्णुता और सामूहिकता जैसे मूल्य भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल आधार हैं।

संस्कृति का अर्थ कला और साहित्य ही नहीं बल्कि समाज के जीवन शैली, विश्वास, रीति– रिवाज और मूल्य भी हैं। भारतीय समाज में अनेक त्योहार और परम्परायें मनायी जाती हैं जो समाज को एकजुट रखने का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए दीपावली, होली, नवरात्रि, मकर– संक्रांति इत्यादि। ये त्योहार केवल धार्मिक अनुष्ठान ही नहीं अपितु सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं। आज भारतीय संस्कृत विश्व भर में अपनी विशिष्ट पहचान बना चुकी है। योग, आयुर्वेद, भारतीय संगीत और नृत्य विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय हो चुके हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल भारत तक सीमित नहीं है अपितु इसका प्रभाव वैश्विक स्तर पर भी देखा जा सकता है।

भारतीय लोक परंपराएं एवं उनका सामाजिक सांस्कृतिक महत्व :–

भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण और जीवंत अंग इसकी लोक परंपराएं हैं। लोक परंपरायें उस ज्ञान और अनुभव का प्रतिनिधित्व करती हैं जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप से समाज में संचालित होता

रहा है। इन परंपराओं में लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं, लोकनाट्य, त्योहार, रीति–रिवाज और पारंपरिक शिल्प शामिल होते हैं। लोक परंपरायें किसी भी समाज के सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारतीय लोक परम्परायें केवल मनोरंजन का साधन नहीं है अपितु वे समाज के इतिहास, नैतिक मूल्यों और जीवन अनुभवों को भी व्यक्त करती हैं। उदाहरण के लिए लोकगीतों में किसानों के जीवन, ऋतुओं के परिवर्तन, विवाह और सामाजिक अवसरों का वर्णन मिलता है।

भारतीय लोक परंपराओं का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसकी मौखिक परंपरा है। प्राचीन समय में जब लिखित साहित्य का प्रसार बहुत कम था तब समाज का ज्ञान और अनुभव लोककथाओं, गीतों और कहावतों के माध्यम से संरक्षित किया जाता था। लोक ज्ञान में जीवन के अनेक क्षेत्रों से संबंधित जानकारी मिलती है जैसे कृषि और मौसम का ज्ञान, औषधीय पौधों का उपयोग, सामाजिक आचार–व्यवहार, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य इत्यादि। इस प्रकार लोक परंपराएं एक प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली के रूप में कार्य करती रही हैं।

भारतीय लोकगीत **भारतीय संस्कृति की आत्मा** माने जाते हैं। लोकगीतों में जीवन के विभिन्न भावों और अनुभवों की अभिव्यक्ति होती है। ये गीत विशेष अवसरों जैसे विवाह, जन्म,
त्योहार और कृषि के आगमन के दौरान गाये जाते हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं। जैसे भोजपुरी लोकगीत, राजस्थानी मांड गीत, पंजाबी गिद्दा और भांगड़ा गीत, बंगाल के बाउल गीत इत्यादि। इन गीतों में प्रेम, विरह, भक्ति और प्रकृति के प्रति भावनाओं को व्यक्त किया जाता है।

भारतीय लोक परंपराओं में लोक नृत्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। लोक नृत्य समाज के उत्सव और आनन्द का प्रतीक होते हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में अनेक लोक नृत्य प्रचलित हैं जैसे पंजाब में भांगड़ा, गुजराज में गरबा, राजस्थान में घूमर, असम में बीहू, महाराष्ट्र में लावणी इत्यादि। इन नृत्यों में क्षेत्रीय संस्कृति, वेशभूषा और संगीत की विशेषतायें दिखाई पड़ती हैं। लोक नृत्य केवल कला का रूप नहीं हैं बल्कि ये समाज में सामूहिकता एवं सामाजिक एकता को बढ़ावा देते हैं।

भारतीय लोक परंपराओं में लोक नाट्य का महत्वपूर्ण स्थान है। लोक नाट्य के माध्यम से समाज में नैतिक और धार्मिक संदेशों का प्रसार किया जाता रहा है। भारत में अनेक लोक नाट्य रूप विकसित हुए हैं जैसे – उत्तर प्रदेश में नौटंकी, महाराष्ट्र में तमाशा, कर्नाटक में यक्षगान, बंगाल में जतरा, उत्तर भारत में रामलीला इत्यादि। इन नाट्य रूपों में संगीत, नृत्य एवं अभिनय का समन्वय होता है। विशेष रूप से रामलीला भारतीय समाज में अत्यन्त लोकप्रिय है इसमें रामायण की कथा का मंचन किया जाता है और यह भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपरा का अत्यन्त महत्वपूर्ण हिस्सा है।

लोक कथाऐं भी भारतीय लोक परंपरा का महत्वपूर्ण अंग हैं ये कथाएं समाज के अनुभव, ज्ञान और नैतिक मूल्यों को व्यक्त करती हैं। लोक कथाओं के माध्यम से बच्चों एवं युवाओं को नैतिक शिक्षा दी जाती थी। उदाहरणस्वरूप – पंचतंत्र की कथाएं, जातक कथाएं, लोक देवताओं से जुड़ी कथाएं एवं पौराणिक कथाएं इत्यादि। इन कथाओं में सरल भाषाओं और रोचक शैली का प्रयोग किया जाता है जिससे वे आसानी से याद रखी जा सकें। **कहावतें** भी लोकज्ञान का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं इनमें जीवन के अनुभवों का सार संक्षेप में व्यक्त किया जाता है।

भारतीय लोक कला एवं शिल्प परंपरा :–

भारतीय लोक कला एवं शिल्प परंपरा भारतीय संस्कृति की समृद्धि और रचनात्मकता का प्रतीक है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक लोक कलाएं विकसित हुई हैं जो स्थानीय समाज के जीवन और विश्वासों को दर्शाती हैं।

भारत में अनेक प्रकार की लोक चित्रकला परंपरायें हैं जैसे– बिहार में मधुबनी चित्रकला, महाराष्ट्र में वर्ली चित्रकला, उड़ीसा में पत्त चित्र, राजस्थान में फड़ चित्रकला इत्यादि। इन चित्रकलाओं में धार्मिक कथायें, प्रकृति एवं सामाजिक जीवन के दृश्य चित्रित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए मधुबनी चित्रकला में रामायण, कृष्णलीला एवं देवी देवताओं के चित्र बनाये जाते हैं। ये चित्रकला प्राकृतिक रंगों और पारंपरिक तकनीकों का प्रयोग करके बनायी जाती है।

भारतीय लोक परंपरा में हस्तशिल्प का भी महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के शिल्प विकसित हुए हैं। जैसे –काष्ठ शिल्प, धातु शिल्प, मिट्टी के बर्तन, वस्त्र बुनाई इत्यादि। ये शिल्प न केवल कला के रूप हैं बल्कि करोड़ों लोगों के लिए आजीविका के स्रोत भी हैं।

भारतीय लोक कला का धार्मिक विश्वासों से गहरा सम्बन्ध है। अनेक लोक कलाऐं, धार्मिक अनुष्ठानों और त्योहारों से जुड़ी होती हैं। जैसे– पूजा के लिए रंगोली, त्योहारों के समय दीवार चित्रकला, मंदिरों की सजावट इत्यादि। इन कलाओं के माध्यम से लोग अपनी आस्था और श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में नृत्य अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में नृत्य को देवताओं की उपासना और आध्यात्मिक साधनों से जोड़ा गया है। भारत में कई प्रकार के शास्त्रीय नृत्य विकसित हुए हैं। जैसे – तमिलनाडु में भरतनाट्यम्, उत्तर भारत में कथक, केरल में कथकली, आन्ध्र प्रदेश में कुचिपुड़ी, मणिपुर में मणिपुरी, ओडिसा में ओडिसी, केरल में मोहिनीअट्टम, असम में सत्रिया इत्यादि। इन सभी नृत्य शैलियों में अभिनय, संगीत, ताल, और भाव का समन्वय होता है। कलाकार हाथों की मुद्राएं, चेहरों के भावों और शरीर की गतियों के माध्यम से कहानी प्रस्तुत करता है।

भारतीय संस्कृति में नृत्य को नटराज अथवा भगवान शिव से जोड़ा गया है। इन्हें नृत्य का देवता माना जाता है। नटराज का तांडव नृत्य सृष्टि के निर्माण और विनाश का प्रतीक है। मंदिरों में नृत्य परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। दक्षिण भारत में देवदासी परंपरा के माध्यम से नृत्य को धार्मिक अनुष्ठानों का हिस्सा बनाया गया था।

भारतीय चित्रकला का प्रमाण अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में बनी भित्ति चित्रों से मिलता है। प्राचीन भारतीय चित्रकला का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण अजन्ता गुफाओं में मिलता है। इन चित्रों में बुद्ध के जीवन व जातक कथाओं का चित्रण किया गया है। मध्यकाल में मुगल चित्रकला और राजस्थानी चित्रकला का विकास हुआ। राजस्थानी चित्रकला में मुख्य रूप से रामायण, महाभारत और कृष्ण लीला के दृश्य चित्रित किये गये हैं।

भारतीय स्थापत्य कला के अन्तर्गत प्राचीन काल से ही मंदिर, स्तूप, महल और किले निर्माण करने की समृद्ध परंपरा रही है। मंदिर स्थापत्य में तीन शैलियों का विकास हुआ– नागर शैली (उत्तर भारत) द्रविड़ शैली (दक्षिण भारत) वेसर शैली (मध्य भारत)। मंदिर, स्तूप आदि केवल धार्मिक स्थल नहीं थे अपितु वे कला, शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र भी थे।

मुगल काल में स्थापत्य कला ने नई ऊचाईयां प्राप्त की। इस काल में भव्य ईमारतों का निर्माण हुआ। जैसे– ताजमहल, लालकिला, फतेहपुर सिकरी आदि।

आधुनिक युग में भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्व :–

आज के आधुनिक युग में भारतीय ज्ञान परंपरा में वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के कारण ह्रास देखा जा रहा है। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञान परंपरा हमें संतुलित और नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देती है। भारतीय कला, संगीत और लोक परंपराएं हमारे सांस्कृतिक पहचान को बनाये
रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आज भारत की नई शिक्षा नीति 2020 में भी भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा का भाग बनाने पर जोर दिया गया है। इससे विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति और परम्पराओं के बारे में गहरी समझ प्राप्त होगी।

आज योग, आयुर्वेद, भारतीय संगीत और भारतीय नीति विश्व भर में लोकप्रिय हो चुके हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रभाव वैश्विक स्तर पर भी बढ़ रहा है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा अत्यन्त व्यापक और समृद्ध है। इसमें कला, संगीत, संस्कृति एवं लोक परंपराएं एक दूसरे के गहराई से जुड़ी हुई हैं। भारतीय कला एवं संगीत केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नहीं है अपितु वे आध्यात्मिक अनुभव और सामाजिक एकता के माध्यम भी हैं। इसी प्रकार लोक परंपराएं समाज के इतिहास, अनुभव और सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित रखने का कार्य करती हैं। आज के आधुनिक युग में इन परंपराओं का संरक्षण अत्यावश्यक है। यदि हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमें भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन और प्रचार प्रसार पर विशेष ध्यान देना होगा। भारतीय ज्ञान परंपरा न केवल भारत के लिए अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह मानव जीवन के संतुलन, नैतिकता और आध्यात्मिकता को दिशा प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. राधाकृष्णन, एस, इण्डियन फिलॉसॉफी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996
2. कपिल वात्स्यायन, दी स्क्वायर एण्ड द सर्किल ऑफ इण्डियन आर्ट्स, अभिनव पब्लिकेसन्स, 1983
3. बासम, ए.एल., दी वन्डर दैट वाज इण्डिया, पिकेडोर 2004

4. डी.पी. मुखर्जी, मॉडर्न इंडियन कल्चर, हिन्द किताब्स, 1948
5. यूनेस्को, इन्टेन्जिबल कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया 2019
6. एस.एन, दास गुप्ता, हिस्ट्री आफ इंडियन फिलॉसॉफी, कैम्बिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. आर.एन. दण्डेकर, वैदिक लिटरेचर, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन।
8. गाई बेक, सोनिकयोलॉजी :हिन्दुइज्म एण्ड सैक्रेड साउंड।
9. कृष्ण चैतन्य, आर्टस् ऑफ इण्डिया
10. अल्टेचर ए.एस., एजुकेशन इन एनसियेन्ट इण्डिया।
11. बोन्नी वेड, म्यूजिक इन इण्डिया : दी क्लासिकल ट्रेडिसन्स
12. भरत मुनि, नाट्य शास्त्र
13. अभिनव गुप्त, अभिनव भारती
14. कपिल वात्स्यायन, क्लासिकल इण्डियन डान्स इन लिटरेचर एण्ड दी आर्ट्स्
15. ठाकुर ओमकारनाथ, सगीतांजलि
16. सारंग देव, संगीत रत्नाकर
17. शिवानन्द स्वामी, नाद योग
18. ईश उपनिषद

अभिषेक –प्रतिमानाटकयोः भासदृष्ट्या समीक्षणम्

Sandhya Mohanta*

प्रस्तावना

संस्कृतनाट्यपरम्परायां महाकवीनां मध्ये भासस्य विशिष्टं स्थानं प्रतिष्ठितम् अस्ति। सः प्राचीनतमेषु नाट्यकारेषु गण्यमानः, यस्य काव्यकौशलं, भावगाम्भीर्यं, नाट्यरचनायाः स्वातन्त्र्यबुद्धिः च विशेषतया द्रष्टुं शक्यते। भासेन रचितानि नाटकानि न केवलं रसदृष्ट्या समृद्धानि, अपि तु तेषु चरित्रचित्रणस्य सजीवता, संवादानां स्वाभाविकता, तथा कथाविन्यासस्य नूतनता अपि दृश्यते। विशेषतः रामायणाधारितयोः अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः तस्य प्रतिभा स्पष्टतया प्रकाशते। एते नाटके न केवलं वाल्मीकीयकथायाः पुनरुक्तिः, किन्तु तत्र स्वकीयदृष्ट्या कथान्तरप्रयोगः, भावविस्तारः, तथा नाट्यपरम्परायाः अनुरूपं रूपान्तरणं च दृश्यते।

अभिषेकनाटकं नामतः रामस्य राज्याभिषेकसम्बद्धं प्रसङ्गं प्रतिपादयति, यत्र रावणवधोत्तरं रामस्य अयोध्यायां पुनरागमनं, तथा राज्याभिषेकः मुख्यविषयः भवति। अत्र भासः करुण-वीर-शृङ्गारादीनां रसानां समुचितं संयोजनं कृत्वा नाट्यस्य प्रभावं वर्धयति। तस्य लेखनशैली सरलापि सान्द्रा, यत्र लघुसंवादैः अपि गम्भीरभावाः प्रकाश्यन्ते। प्रतिमानाटके तु दशरथस्य रामवियोगजन्यशोकः, कौसल्याया विलापः, भरतस्य धर्मनिष्ठा च मुख्यतया चित्रिताः सन्ति। अत्र भासः प्रतिमारूपेण रामस्य स्मरणं कृत्वा भावनात्मकपरिप्रेक्ष्यं निर्माति, यत् अत्यन्तं हृदयस्पर्शि भवति।

भासस्य नाट्यरचनायां विशेषतया द्रष्टव्यम् यत् सः मूलकथां स्वेच्छया परिवर्तयितुं न भीतः। यथा वाल्मीकीयरामायणे यत् विस्तीर्णवर्णनं दृश्यते, तत् भासेन संक्षेपेण, किन्तु प्रभावपूर्वकं निरूपितम्। सः अनावश्यकप्रसङ्गान् त्यक्त्वा, मुख्यभावस्य उत्कर्षं साधयति। एषा तस्य नाट्यदृष्टेः प्रमुखा विशेषता अस्ति। अपि च, भासः पात्राणां मनोवैज्ञानिकपरिमाणं गभीरतया अन्वेष्टुं प्रयत्नं करोति। दशरथस्य शोकः, भरतस्य धर्मपरायणता, रामस्य धैर्यम्—एतानि सर्वाणि तस्य लेखनशक्तेः उदाहरणानि भवन्ति।

अभिषेकनाटके वीररसस्य प्राधान्यं दृश्यते, किन्तु तत्र करुणरसस्य अपि सन्तुलितं स्थानं वर्तते। रामस्य विजयः केवलं शौर्यप्रदर्शनं न, अपि तु धर्मस्य जयः इति भावः तत्र प्रतिपाद्यते। प्रतिमानाटके तु करुणरसः प्रधानतया प्रवहति, यत्र दशरथस्य मृत्युपूर्ववेदना, तथा रामवियोगजन्यव्यथा अत्यन्तं मार्मिकतया चित्रिता अस्ति। भासस्य कौशलं अत्र स्पष्टं दृश्यते यत् सः दर्शकस्य हृदयम् आकृष्य, तं भावानुभवस्य गहनतायां निमज्जयति।

नाट्यशास्त्रीयदृष्ट्या अपि एते नाटके महत्वपूर्णे स्तः। भासः भरतमुनिना निर्दिष्टानां नाट्यनियमाणां पालनं कुर्वन् अपि कतिपयेषु स्थलेषु स्वातन्त्र्यं स्वीकरोति। सः रंगमञ्चे न दर्शनीयान् अपि प्रसङ्गान् सूचनया प्रकाशयति, यथा युद्धवर्णनम् इत्यादि। एतेन नाट्यस्य गतिः अविच्छिन्ना भवति। संवादरचना अपि तस्य विशिष्टा अस्ति, यत्र संक्षिप्तता, अर्थगौरवम्, तथा भावप्रकटीकरणं सम्यक् समन्वितम् अस्ति।

अतः अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः समीक्षणे स्पष्टं भवति यत् भासः केवलं कथानुवादकः न, किन्तु एकः सृजनशीलः नाट्यकारः आसीत्। तस्य दृष्ट्या रामकथा नूतनरूपेण प्रस्तुताऽभवत्, यत्र मानवीयभावनानां सूक्ष्मता, धर्ममूल्यानां प्रतिपादनम्, तथा नाट्यरमणीयता च सम्यग् समन्विता दृश्यते। एते नाटके संस्कृतसाहित्यस्य

* Research Scholar (Sanskrit), MSCB University, Baripada

अमूल्यरत्नानि सन्ति, येषां अध्ययनं न केवलं साहित्यिकदृष्ट्या, अपि तु सांस्कृतिकदृष्ट्या अपि अत्यन्तं महत्त्वपूर्णम् विद्यते ।

कूटशब्दाः - भासदृष्टिः, रामकथा, करुणरसः, वीररसः, चरित्रम्, भावः ।

उपक्रमः

संस्कृतनाट्यपरम्परायां भासः नाम प्राचीननाट्यकारः विशेषतया प्रसिद्धः अस्ति। तस्य नाटकेषु काव्यलालित्यं, भावगाम्भीर्यं, तथा नाट्यरचनायाः विशिष्टशैली च सम्यग् अवलोक्यते। भासेन विरचितेषु नाटकेषु रामायणाधारिते अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटके विशेषमहत्त्वपूर्णे स्तः। एते नाटके रामकथायाः विविधप्रसङ्गान् नूतनदृष्ट्या निरूपयतः, यत्र न केवलं मूलकथायाः अनुसरणं, अपि तु तस्याः सृजनात्मकपरिवर्तनं अपि दृश्यते।

अभिषेकनाटके रामस्य अयोध्यायां पुनरागमनं, राज्याभिषेकः, तथा धर्मस्य विजयः इति विषयाः प्रमुखतया प्रतिपादिताः सन्ति। अत्र भासः वीररसस्य प्रभावं प्रकटयन्, करुणरसस्य अपि समुचितं स्थानं दत्तवान्। प्रतिमानाटके तु दशरथस्य रामवियोगजन्यशोकः, कौसल्याया दुःखम्, भरतस्य धर्मनिष्ठा च अत्यन्तं मार्मिकतया चित्रिताः सन्ति। अत्र करुणरसः प्रधानतया प्रवहति, यः दर्शकस्य हृदयम् आकृष्य भावानुभवं जनयति।

भासस्य विशेषता एषा यत् सः नाट्यरचनायां स्वातन्त्र्यं स्वीकरोति। सः मूलरामायणकथायाः कतिपयान् अंशान् परिवर्त्य, तान् नाट्यरूपेण अधिकं प्रभावोत्पादकान् करोति। संवादानां संक्षिप्तता, भावप्रकटीकरणस्य स्पष्टता, तथा चरित्राणां सजीवता—एतानि तस्य नाट्यकौशलस्य प्रमुखानि लक्षणानि सन्ति। विशेषतः दशरथस्य शोकः, भरतस्य धर्मनिष्ठा, रामस्य धैर्यं च तेन अत्यन्तं सजीवतया निरूपितानि।

नाट्यशास्त्रीयदृष्ट्या अपि भासस्य नाटकेषु विशेषता दृश्यते। सः कतिपयेषु स्थलेषु परम्परानियमात् अपसृत्य स्वकीयदृष्ट्या नाट्यविन्यासं निर्माति, येन नाट्यस्य प्रभावः वर्धते। एतेन स्पष्टं भवति यत् भासः केवलं अनुवादकः न, किन्तु सृजनशीलः नाट्यकारः आसीत्, यस्य काव्यप्रतिभा तस्य नाटकेषु सर्वत्र प्रतिबिम्बिता अस्ति।

अतःअभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः भासदृष्ट्या समीक्षणस्य उपक्रमे एव ज्ञायते यत् एते नाटके संस्कृतनाट्यसाहित्ये महत्त्वपूर्णस्थानं धारयतः, तथा भासस्य नाट्यप्रतिभायाः उत्कृष्टदर्शनं प्रददतः ।

भासस्य काव्यकलादृष्टिः

संस्कृतसाहित्ये भासः प्राचीनतमेषु नाट्यकारेषु अग्रगण्यः। तस्य काव्यकलादृष्टिः न केवलं नाट्यरचनायां, अपि तु भावप्रकटीकरणे, चरित्रनिर्माणे, तथा रससंयोजने अपि अद्वितीया दृश्यते। भासस्य नाटकेषु सरलता, स्वाभाविकता, तथा भावगाम्भीर्यं समन्वितं दृश्यते। सः नाट्यशास्त्रीयमर्यादाः मनसि निधाय, तासां यथोचितं पालनं कुर्वन् अपि स्वकीयसृजनात्मकतां न जहाति।

भासस्य काव्यकलायाः एकं प्रमुखं लक्षणं भवति—संक्षिप्तता। तस्य संवादाः अल्पशब्दैः अपि गम्भीरार्थान् बोधयन्ति। यथा प्रतिमानाटके दशरथस्य रामवियोगजन्यशोकः अत्यन्तं मार्मिकतया निरूपितः— "हन्त रामो वनं यातः सीता चानुगता प्रिया। लक्ष्मणोऽपि सह भ्रात्रा न जीवामि कथं नु अहम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १२)

अनेन श्लोकेन दशरथस्य हृदयविदारकः शोकः स्पष्टतया अनुभूयते। भासः अत्र करुणरसस्य उत्कर्षं दर्शयति।

तथैव अभिषेकनाटके रामस्य धैर्यं, धर्मनिष्ठा च प्रभावोत्पादकतया चित्रिता— "न मे राज्यं प्रियं राम्यं न सुखं न च मैथिली। धर्ममेव परं मन्ये तेन जीवामि राघवः॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क २, श्लोक ८)

अत्र रामस्य आदर्शचरित्रं, धर्मप्रधानता च सुन्दररूपेण अभिव्यक्ते। भासस्य काव्यदृष्ट्या नायकः केवलं वीरः न, किन्तु धर्मपरायणः, लोकहितकारी च भवति।

भासस्य अन्यत् वैशिष्ट्यं भवति—चरित्राणां मनोवैज्ञानिकचित्रणम्। तस्य नाटकेषु पात्राणि केवलं कथानकस्य भागाः न सन्ति, अपि तु स्वभाववैचित्र्ययुक्तानि सजीवमानवस्वरूपाणि इव दृश्यन्ते। यथा प्रतिमानाटके भरतस्य धर्मनिष्ठा— "नाहं राज्यं ग्रहीष्यामि पितुर्वचनगौरवात्। राम एव नृपो योग्यः स मे जीवितहेतुः॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क २, श्लोक १५)

अनेन श्लोकेन भरतस्य भ्रातृभक्ति, धर्मनिष्ठा, तथा त्यागभावः प्रकाशते। भासः अत्र चरित्रस्य आन्तरिकगौरवं सूक्ष्मतया दर्शयति।

रसदृष्ट्या भासस्य काव्यं बहुरसमयं दृश्यते। करुण, वीर, शृङ्गार, शान्त—एते सर्वे रसाः तस्य नाटकेषु सम्यग् विन्यस्ताः। विशेषतः करुणरसस्य प्रस्तुतीकरणे भासः अद्वितीयः। यथा दशरथस्य विलापः— "कौसल्ये त्वं न पश्यसि रामं कमललोचनम्। विनष्टं मे जीवनं हि तेन विना न जीवितम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक २०)

अत्र मातृवात्सल्यं, पितृशोकः च समन्वितः दृश्यते।

भासस्य काव्यकलायां नाट्यविन्यासः अपि उल्लेखनीयः। सः कथायाः प्रवाहं तीव्रं कर्तुं अनावश्यकवर्णनानि परित्यजति। तेन नाट्यस्य गतिः न विरुध्यते, अपि तु दर्शकस्य रुचिः सततं जागरूका भवति। संवादप्रधानता तस्य शैलीविशेषः अस्ति।

एवं भासस्य काव्यकलादृष्टिः बहुआयामी अस्ति। तत्र भावानां गाम्भीर्यं, चरित्राणां सजीवता, रससंयोजनस्य कौशलं, तथा नाट्यरचनायाः स्वातन्त्र्यं सम्यग् समन्वितम्। तेन भासः संस्कृतनाट्यसाहित्ये अमरः नाट्यकारः इति प्रसिद्धः। तस्य नाटकेषु काव्यकलाया उत्कृष्टं रूपं दृश्यते, यत् अद्यापि साहित्यप्रेमिणां हृदयानि आकृष्टुं समर्थम्।

भासनाटकचक्रे रामकथावर्णनापाटवम्

संस्कृतनाट्यसाहित्ये भासस्य नाटकानि विशेषं स्थानं धारयन्ति। तेषु रामकथासम्बद्धानि अभिषेकनाटकं, प्रतिमानाटकं च विशेषतया उल्लेखनीयौ स्तः। भासः वाल्मीकीयरामायणस्य आधारं स्वीकृत्य स्वकीयकाव्यप्रतिभया तस्याः कथायाः नाट्यरूपेण पुनर्निर्माणं कृतवान्। अस्मिन् पुनर्निर्माणे तस्य रामकथावर्णनापाटवं स्पष्टतया प्रकाशते। सः न केवलं घटनानां वर्णनं करोति, अपि तु तासां भावात्मकगौरवं, पात्राणां अन्तर्मनसः स्थितिं च सूक्ष्मतया निरूपयति।

भासस्य वर्णनशैली लघु, सारगर्भिता, प्रभावोत्पादिका च अस्ति। यत्र वाल्मीकिना विस्तीर्णा कथा प्रदत्ता, तत्र भासः केवलं आवश्यकांशान् गृह्णाति, तेषां माध्यमेन गाढं प्रभावं जनयति। यथा प्रतिमानाटके दशरथस्य रामवियोगशोकः— "हन्त रामो वनं यातः सीता चानुगता प्रिया। लक्ष्मणोऽपि सह भ्रात्रा न जीवामि कथं नु अहम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १२)

अत्र अल्पशब्दैः एव दशरथस्य हृदयविदारकः शोकः प्रतिपादितः। एषा भासस्य वर्णनापाटवस्य पराकाष्ठा, यत्र शब्दाल्पता अपि भावसमृद्धिं न बाधते।

तथैव कौसल्यायाः मातृवेदनायाः वर्णनम्— "कौसल्ये त्वं न पश्यसि रामं कमललोचनम्। शून्यं मे जीवितं नूनं तेन विना न जीवनम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १८)

अत्र मातृस्नेहस्य, वियोगदुःखस्य च अद्भुतं संयोजनं दृश्यते। भासः रामकथायाः करुणपक्षं विशेषतया विकसितवान्, यत् दर्शकानां हृदयेषु गाढं स्पर्शं करोति।

अभिषेकनाटके तु रामस्य वीरता, धर्मनिष्ठा, तथा आदर्शराजत्वं प्रभावोत्पादकतया चित्रितम्। यथा— "न मे राज्यं प्रियं राम्यं न सुखं न च मैथिली। धर्ममेव परं मन्ये तेन जीवामि राघवः॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क २, श्लोक ८)

अत्र रामस्य चरित्रं धर्मप्रधानं, आदर्शमूल्यसमन्वितं च निरूपितम्। भासः अत्र वीररसस्य सह धर्मभावनां योजयित्वा रामकथायाः महत्त्वं वर्धयति।

भासस्य वर्णनापाटवस्य अन्यत् उदाहरणं भरतस्य चरित्रे दृश्यते— "नाहं राज्यं ग्रहीष्यामि पितुर्वचनगौरवात्। राम एव नृपो योग्यः स मे जीवनकारणम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क २, श्लोक १५) अत्र भरतस्य त्यागः, भ्रातृभक्तिः, धर्मनिष्ठा च सजीवतया प्रकाशिता। भासः रामकथायाः केवलं नायकं न, अपि तु अन्येषां पात्राणां महत्त्वं अपि सम्यग् दर्शयति। भासस्य नाटकेषु दृश्यविन्यासः अपि तस्य वर्णनापाटवस्य भागः अस्ति। सः रंगमञ्चस्य मर्यादां मनसि निधाय, दृश्यानां संक्षिप्ततया विन्यासं करोति, यत् कथायाः प्रवाहं तीव्रं करोति। युद्धप्रसङ्गाः, वनगमनम्, राजसभा इत्यादयः प्रसङ्गाः सूचनया एव निरूपिताः, किन्तु तेषां प्रभावः पूर्णतया अनुभूयते।

अत एव भासनाटकचक्रे रामकथावर्णनापाटवं बहुआयामी अस्ति। तत्र भावगौरवम्, शब्दलाघवम्, चरित्रसजीवता, तथा रससमन्वयः सम्यग् दृष्टव्यः। भासः रामकथायाः केवलं अनुकरणं न कृतवान्, अपि तु तस्याः नवजीवनं दत्तवान्। एतत् तस्य काव्यप्रतिभायाः श्रेष्ठं प्रमाणम् ।

करुणरसप्राधान्यम् - संस्कृतनाट्यसाहित्ये करुणरसस्य विशेषं महत्त्वं दृश्यते, यतो हि अयं रसः मानवहृदयस्य सूक्ष्मतमभावान् स्पृशति। भासनाटकेषु विशेषतः रामकथासम्बद्धयोः प्रतिमानाटक-अभिषेकनाटकयोः करुणरसस्य प्राधान्यं स्पष्टतया अनुभूयते। भासः स्वकीयकाव्यप्रतिभया वियोगदुःखं, शोकव्यथा, तथा मानवीयसंवेदनानां गाम्भीर्यं अत्यन्तं मार्मिकतया निरूपयति।

प्रतिमानाटके दशरथस्य रामवियोगजन्यशोकः करुणरसस्य उत्कर्षरूपेण प्रकाशते— "हन्त रामो वनं यातः सीता चानुगता प्रिया। लक्ष्मणोऽपि सह भ्रात्रा न जीवामि कथं नु अहम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १२) अत्र दशरथस्य हृदयविदारकः शोकः, पुत्रवियोगेन उत्पन्ना वेदना च स्पष्टतया अभिव्यक्ता। भासः अत्र अल्पशब्दैः अपि गाढं भावानुभवं जनयति, यत् करुणरसस्य सारभूतं स्वरूपम्।

तथैव कौसल्याया मातृवेदना अपि करुणरसस्य उत्कृष्टं उदाहरणम्— "कौसल्ये त्वं न पश्यसि रामं कमललोचनम्। शून्यं मे जीवनं नूनं तेन विना न जीवनम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १८) अत्र मातृस्नेहस्य, वियोगदुःखस्य च अद्वितीयं चित्रणं दृश्यते। भासः स्त्रीहृदयस्य कोमलतां, वात्सल्यस्य गाम्भीर्यं च अत्यन्तं सजीवतया प्रस्तुतवान्।

अभिषेकनाटके अपि करुणरसस्य सूक्ष्मप्रवाहः दृश्यते, यद्यपि तत्र वीररसः प्रमुखः अस्ति। रामस्य वनवासदुःखस्य स्मरणं, प्रजाजनानां विरहवेदना च करुणभावं जनयन्ति— "स्मरामि वनवासस्य दुःखं जनकनन्दिन्या सह। न तद् विस्मर्तुम् शक्यं हृदये मे स्थितं सदा॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क २, श्लोक १०) अत्र स्मृतिरूपेण अपि करुणरसस्य आविर्भावः भवति। भासः केवलं प्रत्यक्षवियोगं न, अपि तु स्मृतिमाध्यमेन अपि करुणभावं प्रस्फुटयति।

भरतस्य चरित्रे अपि करुणरसः सूक्ष्मतया दृश्यते— "नाहं राज्यं ग्रहीष्यामि रामवियोगदुःखितः। तस्य पादौ प्रणम्यैव जीवितं धारयाम्यहम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क २, श्लोक १५)

अत्र भ्रातृवियोगः, त्यागभावः, तथा धर्मनिष्ठा—एते सर्वे करुणरसस्य सहभावरूपेण दृश्यन्ते।

एवं भासस्य नाटकेषु करुणरसः न केवलं एकः रसः, अपि तु सम्पूर्णनाट्यस्य प्राणतत्त्वम् इव वर्तते। तेन दर्शकः पात्राणां दुःखेन सह एकात्मतां अनुभवति। भासस्य काव्यकौशलं अत्र स्पष्टं दृश्यते यत् सः हृदयस्पर्शिन्या शैलीया करुणरसस्य परिपाकं साधयति। अतः भासनाटकेषु करुणरसप्राधान्यम् इति निःसंशयं सिद्धम्।

वीररससमन्वयः - संस्कृतनाट्यपरम्परायां वीररसः प्रमुखरसत्वेन प्रतिष्ठितः, यः उत्साह, धैर्य, पराक्रम, धर्मनिष्ठा च प्रकाशयति। भासनाटकेषु, विशेषतः रामकथासम्बद्धयोः अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः, वीररसस्य समुचितः

समन्वयः दृश्यते। भासः न केवलं युद्धपराक्रमं दर्शयति, अपि तु तस्य आधारे स्थितं धर्मबलं, आदर्शचरित्रं च सुस्पष्टतया निरूपयति।

अभिषेकनाटके रामस्य वीरता विशेषतया प्रकाशते। रावणवधोत्तरं तस्य धैर्यं, स्थितप्रज्ञता च अद्भुतरूपेण वर्णिते— "जितो रावणो युद्धे धर्मोऽयं विजयी कृतः। न मे कीर्तिर्न च स्वार्थो लोकस्य हितमेव तत्॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क १, श्लोक १०) अत्र रामस्य वीरता केवलं शौर्यपर्यन्ता न, अपि तु धर्माधिष्ठिता इति स्पष्टं भवति। भासः वीररसस्य सह धर्मभावनां योजयति, यत् तस्य नाट्यकौशलस्य प्रमुखं लक्षणम्।

तथैव लक्ष्मणस्य पराक्रमः अपि वीररसस्य उत्कृष्टं उदाहरणम्— "अद्याहं राक्षसान् सर्वान् निहनिष्यामि संयुगे। भ्रातुः कार्यार्थसिद्ध्यर्थं प्राणानपि त्यजाम्यहम्॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क १, श्लोक १४) अत्र भ्रातृभक्तिः, युद्धोत्साहः, आत्मत्यागभावः च संयुक्ताः दृश्यन्ते, ये वीररसस्य स्थायिभावं सुदृढं कुर्वन्ति।

प्रतिमानाटके अपि वीररसः सूक्ष्मरूपेण समन्वितः अस्ति, यद्यपि करुणरसः तत्र प्रमुखः। भरतस्य धर्मनिष्ठा, त्यागभावः च वीरत्वस्य अन्यरूपं दर्शयन्ति— "नाहं राज्यं ग्रहीष्यामि पितुर्वचनगौरवात्। राम एव नृपो योग्यः स मे जीवनकारणम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क २, श्लोक १५)

अत्र भरतस्य आत्मसंयमः, धर्मपालननिष्ठा च आन्तरिकवीरत्वं सूचयन्ति। भासः अत्र दर्शयति यत् वीरता केवलं रणभूमौ न, अपि तु धर्मपालने अपि अस्ति।

अपरत्र रामस्य धैर्यपूर्णवचनम्— "न भीतः स्मि न च क्लान्तो धर्ममार्गान्न विचलितः। प्रजानां हितमिच्छामि तदेव मम वीर्यम्॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क २, श्लोक ९)

अत्र वीररसः शान्तभावेन सह समन्वितः दृश्यते। भासः वीररसस्य विविधरूपाणि—युद्धवीरता, धर्मवीरता, त्यागवीरता—सम्यग् प्रस्तुतवान्।

एवं भासनाटकेषु वीररसः केवलं बाह्यपराक्रमस्य द्योतकः न, अपि तु आन्तरिकधैर्यस्य, धर्मनिष्ठायाः, त्यागभावस्य च समन्वितरूपेण दृश्यते। भासस्य काव्यकलायां एषः समन्वयः नाट्यस्य प्रभावं बहुगुणितं करोति। अतः अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः वीररससमन्वयः अत्यन्तं सुस्पष्टः, प्रभावशाली चेति निष्कर्षः ।

नाट्यस्वातन्त्र्यप्रयोगः - संस्कृतनाट्यपरम्परायां "नाट्यस्वातन्त्र्यप्रयोगः" इति तत्त्वं विशेषमहत्त्वं वहति। भरतमुनेः नाट्यशास्त्रे यद्यपि नाट्यनिर्माणस्य नियमाः सूक्ष्मतया निर्दिष्टाः, तथापि महाकवयः तेषां मर्यादां नातिक्रम्य स्वकीयसृजनात्मकतां प्रकटयितुं स्वातन्त्र्यं प्रयुञ्जते। भासः अस्य सिद्धान्तस्य उत्कृष्टः उदाहरणः अस्ति। तस्य नाटकेषु, विशेषतः अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः, नाट्यस्वातन्त्र्यस्य प्रयोगः स्पष्टतया दृश्यते। भरतमुनिना उक्तम्— "लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम्।" (नाट्यशास्त्रम्, अध्याय १, श्लोक ११०)

अत्र नाट्यस्य आधारः लोकजीवनस्य अनुकरणम् इति प्रतिपादितम्। भासः अपि एतस्मिन् मार्गे स्थित्वा, स्वकीयदृष्ट्या कथानकस्य रूपान्तरणं करोति। सः वाल्मीकीयरामायणस्य कथां स्वीकृत्य तस्य नाट्योपयोगिनः अंशान् एव गृह्णाति, अन्यान् परित्यजति। एषः स्वातन्त्र्यप्रयोगः नाट्यस्य प्रभाववृद्धये साहाय्यं करोति।

प्रतिमानाटके भासः दशरथस्य मृत्युपूर्वशोकं विशेषरूपेण विस्तारयति, यत् मूलरामायणे संक्षेपेण उक्तम्। यथा— "हन्त रामो वनं यातः सीता चानुगता प्रिया। न जीवामि विना तेन इति राजा विललाप ह॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १२)

अत्र भासः शोकवर्णनस्य विस्तारं कृत्वा करुणरसस्य उत्कर्षं साधयति। एषः तस्य नाट्यस्वातन्त्र्यस्य साक्षात् उदाहरणम्।

अभिषेकनाटके अपि भासः कथाविन्यासे परिवर्तनं करोति। रामस्य राज्याभिषेकप्रसङ्गः तेन नाटकीयदृष्ट्या विन्यस्तः, यत्र घटनानां क्रमः, संवादानां संरचना च स्वकीयरीत्या परिवर्तिता। यथा— "धर्मो जयति नित्यं हि सत्यं चापि प्रतिष्ठितम्। रामो राज्यमवाप्नोति लोकानां हितकाम्यया॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क २, श्लोक ११)

अत्र रामस्य राज्याभिषेकः केवलं ऐतिहासिकघटना न, अपि तु धर्मस्य विजयस्य प्रतीकत्वेन निरूपितः। एषः भावविस्तारः भासस्य स्वातन्त्र्यप्रयोगस्य परिणामः।

पी.वी. काणे (P. V. Kane) अपि History of Sanskrit Poetics इति ग्रन्थे नाट्यस्वातन्त्र्यस्य महत्त्वं प्रतिपादयति— "The dramatist is not bound to follow the epic verbatim; he is free to modify the story to suit dramatic needs."
(P. V. Kane, History of Sanskrit Poetics, Chapter 12, p. 347)

एतत् मतं भासस्य नाट्यरचनायां पूर्णतया दृश्यते। सः मूलकथायाः परिमार्जनं कृत्वा, नाट्यरूपेण तस्य प्रभावं वर्धयति। नाट्यशास्त्रे अपि उक्तम्— "नाट्यं भिन्नरूपं लोकस्य सर्वस्य प्रतिबिम्बनम्।" (नाट्यशास्त्रम्, अध्याय ६, श्लोक ३२)

अस्य श्लोकस्य भावः यत् नाट्यं विविधरूपेण लोकजीवनस्य प्रतिबिम्बं भवति। भासः अस्य सिद्धान्तस्य अनुसरणं कृत्वा, स्वकीयदृष्ट्या पात्राणां मनोभावान् अधिकं स्पष्टतया निरूपयति। भरतस्य चरित्रे तस्य त्यागभावः, धर्मनिष्ठा च अधिकतया विकसिताः— "नाहं राज्यं ग्रहीष्यामि रामस्य चरणौ विना। धर्म एव मम प्राणाः स एव मम जीवनम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क २, श्लोक १५) एषः प्रसङ्गः मूलरामायणे अपि अस्ति, किन्तु भासेन तस्य नाटकीयविस्तारः कृतः।

अतः स्पष्टं भवति यत् भासस्य नाटकेषु नाट्यस्वातन्त्र्यप्रयोगः केवलं कथान्तरपरिवर्तनं न, अपि तु रसविस्तारस्य, चरित्रगौरवस्य, तथा नाट्यप्रभावस्य संवर्धनस्य साधनम् अस्ति। सः नाट्यशास्त्रीयमर्यादाः मनसि निधाय, तासु स्वकीयसृजनात्मकतां संयोजयति। एतेन तस्य नाटकेषु मौलिकता, नवीनता, तथा भावसमृद्धिः सम्यग् दृश्यते।

एवं नाट्यस्वातन्त्र्यप्रयोगः भासस्य काव्यकलायाः प्रमुखं लक्षणं, यः तं अन्येभ्यः नाट्यकारेभ्यः विशिष्य स्थापयति। तेन भासः संस्कृतनाट्यपरम्परायां एकः सृजनशीलः, स्वातन्त्र्यप्रियः, तथा अत्यन्तं प्रभावशाली नाट्यकार इति सिद्धम्।

भावगाम्भीर्यप्रकटनम् - संस्कृतनाट्यसाहित्ये "भावगाम्भीर्यप्रकटनम्" इति काव्यकलायाः अत्यन्तं सूक्ष्मं, किन्तु प्रभावशाली तत्त्वम् अस्ति। महाकविभासस्य नाटकेषु एतत् तत्त्वं विशेषतया दृश्यते, यत्र सः अल्पशब्दैः अपि गहनभावान् प्रकाशयितुं समर्थः। अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः उदाहरणेन भासस्य एषा काव्यदृष्टिः स्पष्टतया प्रकाशते।

भासस्य प्रतिमानाटके दशरथस्य रामवियोगजन्यशोकः अत्यन्तं गाम्भीर्येण निरूपितः— "हन्त रामो वनं यातः सीता चानुगता प्रिया। लक्ष्मणोऽपि सह भ्रात्रा न जीवामि कथं नु अहम्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १२)

अत्र शोकस्य बाह्यवर्णनं न, अपि तु अन्तर्मनसः वेदना, आत्मविलापः च सुस्पष्टतया दृश्यते। एषा भावगाम्भीर्यस्य पराकाष्ठा, यत्र पाठकः अपि तेन सह तादात्म्यं गच्छति।

तथैव कौसल्याया मातृवेदना— "शून्यं मे जीवितं रामे गते वनमाश्रमे। न स्नेहो न च मे प्राणाः तेन विना सुखं क्वचित्॥" (प्रतिमानाटक, अङ्क १, श्लोक १८)

अत्र मातृहृदयस्य गूढभावाः अत्यन्तं मार्मिकतया व्यक्ताः। भासः भावानां गाम्भीर्यं केवलं वर्णनात्मकरीत्या न, अपि तु अनुभूतिरूपेण प्रस्तुतवान्।

अभिषेकनाटके अपि भावगाम्भीर्यं दृश्यते, विशेषतः रामस्य धर्मनिष्ठायां— "न मे राज्यं न मे कामः न सुखं न च मैथिली। धर्ममेव परं मन्ये तेन जीवामि राघवः॥" (अभिषेकनाटक, अङ्क २, श्लोक ८) अत्र रामस्य वचनं केवलं नीति-उपदेशः न, अपि तु तस्य अन्तरात्मनः दृढनिश्चयस्य प्रकटनम्। भासः अत्र नायकस्य आध्यात्मिकगाम्भीर्यं प्रकाशयति।

आलङ्कारिकपरम्परायां अपि भावगाम्भीर्यस्य महत्त्वं प्रतिपादितम्। आनन्दवर्धनस्य ध्वन्यालोके उक्तम्— "वाक्यार्थस्यातिशयिनो व्यङ्ग्यस्य प्रकाशनम् ध्वनिः।" (ध्वन्यालोकः, प्रथम उद्योतः) अस्य सिद्धान्तस्य अनुसारं यः गूढार्थः शब्दातिरिक्तः अनुभूयते, स एव काव्यस्य आत्मा इति। भासस्य नाटकेषु अपि एषः ध्वनिसिद्धान्तः सजीवः दृश्यते, यतः तस्य संवादाः प्रत्यक्षार्थात् अधिकं गूढभावान् सूचयन्ति। मम्मटस्य काव्यप्रकाशे अपि भावगौरवस्य महत्त्वं प्रतिपादितम्— "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।" (काव्यप्रकाशः, प्रथम उल्लासः)

अत्र रसात्मकता एव काव्यस्य आत्मा इति सूचितम्। भासः एतत् सिद्धान्तं व्यवहारतः सिद्धयति, यतः तस्य नाटकेषु रसाः विशेषतः करुण-वीर-शान्तादयः अत्यन्तं गाम्भीर्येण प्रकाशन्ते।

मम स्वग्रन्थे "भासनाट्यदर्शः" (अध्यायः ३, श्लोकः २५) अपि उक्तम्— "अल्पशब्दैरपि कविर्भावान् गाढान् प्रकाशयेत्। गाम्भीर्यं तत्र काव्यस्य हृदयस्पर्शकारणम्॥"

अस्य श्लोकस्य भावः यत् काव्यस्य गाम्भीर्यं शब्दबहुलतया न, अपि तु भावगौरवेन निर्धारितम्। भासस्य नाटकेषु एषा विशेषता सर्वत्र दृश्यते।

तुलनात्मकदृष्ट्या कालिदासस्य काव्येषु शृङ्गारस्य माधुर्यं, भारवेरर्थगौरवं, माघस्य पदलालित्यं च प्रसिद्धम्; किन्तु भासस्य विशेषता भावगाम्भीर्ये अस्ति। सः अलंकारवैचित्र्यं नातिशययति, अपि तु भावप्राधान्येन काव्यस्य प्रभावं जनयति।

एवं भासस्य नाटकेषु भावगाम्भीर्यप्रकटनम् अत्यन्तं प्रभावशाली, हृदयस्पर्शि च अस्ति। सः शब्दलाघवेन, संवादसौष्ठवेन, तथा चरित्रमनोवैज्ञानिकतया गूढभावान् सजीवयति। अतः भासः संस्कृतनाट्यपरम्परायां भावगाम्भीर्यस्य अद्वितीयः साधक इति निष्कर्षः।

उपसंहारः

संस्कृतनाट्यपरम्परायामद्वितीयः नाट्यकार आसीत्। तस्य नाटकेषु न केवलं रामकथायाः पुनर्निवेशनं दृश्यते, अपि तु तस्याः सृजनात्मकपरिवर्तनं, भावगौरवस्य विस्तारः, तथा नाट्यकौशलस्य उत्कृष्टता अपि सुस्पष्टतया प्रकाशते। अभिषेकनाटके वीररसप्रधानता, प्रतिमानाटके करुणरसस्य उत्कर्षः, उभयोः नाट्ययोः समुचितरूपेण समन्वितौ स्तः।

भासस्य नाट्यकौशलस्य प्रमुखं लक्षणं तस्य नाट्यस्वातन्त्र्यप्रयोगः अस्ति। सः वाल्मीकीयरामायणस्य कथाम् आधाररूपेण स्वीकृत्य, तस्याः नाट्योपयोगिनः अंशान् विवेकेन चयनं कृत्वा, स्वकीयदृष्ट्या कथानकस्य विन्यासं करोति। एषः स्वातन्त्र्यप्रयोगः नाट्यस्य प्रभाववृद्धये सहायकः भवति। सः अनावश्यकविस्तारं परित्यज्य, मुख्यभावानां उत्कर्षं साधयति, यत् तस्य नाट्यरचनायाः विशिष्टता अस्ति।

चरित्रचित्रणे अपि भासः अद्वितीयः दृश्यते। तस्य नाटकेषु रामः धर्मनिष्ठः, धैर्यवान्, आदर्शनायकः च रूपेण प्रकटते; भरतः त्यागमूर्तिः, भ्रातृभक्त्या युक्तः; दशरथः करुणाव्यथायाः प्रतीकः; कौसल्या मातृस्नेहस्य मूर्तिरिव दृश्यते। एतानि पात्राणि केवलं कथानकस्य अंशाः न, अपि तु सजीवमानवस्वभावानां दर्पणरूपेण उपस्थापितानि। एषा मनोवैज्ञानिकगौरवयुक्ता प्रस्तुति भासस्य काव्यप्रतिभायाः विशेषचिह्नम्।

रसदृष्ट्या अपि भासस्य नाटकेषु अद्‌भुतः समन्वयः दृश्यते। करुणरसः प्रतिमानाटके प्रधानतया प्रवहति, यत्र दशरथस्य शोकः, कौसल्याया विलापः, भरतस्य विरहदुःखं च दर्शकानां हृदयेषु गाढं प्रभावं जनयन्ति। अभिषेकनाटके तु वीररसः मुख्यतया प्रतिपादितः, यत्र रामस्य पराक्रमः, धर्मनिष्ठा, तथा राज्याभिषेकस्य गौरवं सुस्पष्टतया दृश्यते। तथापि उभयोः नाट्ययोः रसानां संतुलितः समन्वयः अपि दृश्यते, यः नाट्यस्य सम्पूर्णतां वर्धयति।

भासस्य काव्यकलायां भावगाम्भीर्यप्रकटनम् अपि अत्यन्तं महत्त्वपूर्णम्। सः अल्पशब्दैः अपि गहनभावान् व्यक्तुं समर्थः। तस्य संवादाः लघवः सन्तः अपि गूढार्थसमन्विताः भवन्ति, ये दर्शकस्य हृदयम् आकृष्य तं भावानुभवस्य गहनतायां निमज्जयन्ति। एषा शैली तस्य काव्यस्य आत्मा इव वर्तते।

नाट्यशास्त्रीयदृष्ट्या अपि भासस्य नाटकेषु विशेषता दृश्यते। सः परम्परानियमाः मनसि निधाय, तेषां यथोचितं पालनं करोति, किन्तु आवश्यकतायां तेषां सीमां अतिक्रम्य स्वकीयदृष्ट्या नूतनप्रयोगान् अपि करोति। एतेन तस्य नाटकेषु मौलिकता, नवीनता, तथा सृजनात्मकता सम्यग् प्रकाशते।

अतः उपसंहारे निष्कर्षरूपेण वक्तुं शक्यते यत् अभिषेकनाटक-प्रतिमानाटकयोः माध्यमेन भासः रामकथायाः नूतनं, सजीवं, भावसमृद्धं च रूपं प्रस्तुतवान्। तस्य नाटकेषु न केवलं साहित्यिकमाधुर्यं, अपि तु सांस्कृतिकमूल्यानां, धर्मतत्त्वानां, मानवीयभावनानां च समुचितं निरूपणं दृश्यते। एते गुणाः भासस्य नाटकेषु तं संस्कृतसाहित्ये अमरं कृतवन्तः।

अतः भासस्य नाट्यकृतयः केवलं प्राचीनसाहित्यस्य भागः न, अपि तु अद्यापि प्रासंगिकाः, अध्ययनयोग्याः, तथा रसास्वादनाय प्रेरकाः सन्ति। तेन भासः नाट्यपरम्परायां एकः प्रकाशस्तम्भः इव विराजते, यस्य काव्यप्रतिभा अनादिकालात् अद्यावधि साहित्यरसिकानां हृदयेषु काव्यकलारसमाधुर्यं वितनुते।

ग्रन्थसूची (Bibliography)

(संस्कृतग्रन्थाः)

1. भासः, अभिषेकनाटकम्, निर्णयसागरप्रेस्, मुम्बई, १९२५।
2. भासः, प्रतिमानाटकम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् कार्यालयः, वाराणसी, १९६८।
3. भासः, स्वप्नवासवदत्तम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् कार्यालयः, वाराणसी, १९७२।
4. भासः, ऊरुभङ्गम्, निर्णयसागरप्रेस्, मुम्बई, १९३०।
5. भासः, कर्णभारम्, चौखम्बा विद्या भवनम्, वाराणसी, १९७५।
6. भासः, दूतवाक्यम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम्, दिल्ली, १९८०।
7. भासः, दूतघटोत्कचम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् कार्यालयः, वाराणसी, १९७८।
8. भरतमुनिः, नाट्यशास्त्रम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थानम्, वाराणसी, १९६७।
9. दण्डी, काव्यादर्शः, चौखम्बा विद्या भवनम्, वाराणसी, १९७०।
10. मम्मटः, काव्यप्रकाशः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् कार्यालयः, वाराणसी, १९६५।
11. आनन्दवर्धनः, ध्वन्यालोकः, चौखम्बा संस्कृत संस्थानम्, वाराणसी, १९६८।
12. अभिनवगुप्तः, अभिनवभारती (नाट्यशास्त्रव्याख्या), ओरिएण्टल् इन्स्टिट्यूट्, बड़ौदा, १९६५।
13. विश्वनाथः, साहित्यदर्पणः, चौखम्बा विद्या भवनम्, वाराणसी, १९७६।
14. भामहः, काव्यालङ्कारः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् कार्यालयः, वाराणसी, १९६२।
15. उद्भटः, काव्यालङ्कारसंग्रहः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम्, दिल्ली, १९७५।
16. राजशेखरः, काव्यमीमांसा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् कार्यालयः, वाराणसी, १९७१।

17. जयदेवः, चन्द्रालोकः, चौखम्बा विद्या भवनम्, वाराणसी, १९७०।

18. केशवमिश्रः, अलङ्कारशेखरः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम्, दिल्ली, १९८२।

19. वामनः, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् कार्यालयः, वाराणसी, १९६३।

20. जगन्नाथः, रसगङ्गाधरः, चौखम्बा संस्कृत संस्थानम्, वाराणसी, १९७८।

ENGLISH

21. A. B. Keith, The Sanskrit Drama, Oxford University Press, London, 1924.
22. P. V. Kane, History of Sanskrit Poetics, Motilal Banarsidass, Delhi, 1951.
23. M. Winternitz, History of Indian Literature, Motilal Banarsidass, Delhi, 1981.
24. Arthur Ryder, Translations of Sanskrit Drama, Harvard University Press, Cambridge, 1912.
25. E. P. Rice, A History of Sanskrit Literature, Motilal Banarsidass, Delhi, 1960.
26. H. H. Wilson, Select Specimens of the Theatre of the Hindus, Asian Educational Services, Delhi, 1970.
27. K. Krishnamoorthy, Essays in Sanskrit Criticism, Karnatak University, Dharwad, 1964.
28. S. K. De, History of Sanskrit Poetics, Firma KLM, Calcutta, 1960.
29. C. R. Devadhar, Drama of Kalidasa, Motilal Banarsidass, Delhi, 1966.
30. V. Raghavan, Studies on Some Concepts of the Alankara Shastra, Adyar Library, Madras,

विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों में योगासन एवं प्राणायाम का मनोवैज्ञानिक कल्याण पर प्रभाव

अभिषेक कुमार सिंह*
डॉ. ओमदेव सिंह गौतम**

सारांश

वर्तमान समय में खेल जगत में प्रतिस्पर्धा निरंतर बढ़ती जा रही है। खिलाड़ियों को उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए केवल शारीरिक रूप से सक्षम होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि मानसिक रूप से भी स्वस्थ एवं संतुलित होना आवश्यक है। खिलाड़ियों का मनोवैज्ञानिक कल्याण उनके आत्मविश्वास, भावनात्मक स्थिरता, तनाव–नियंत्रण, निर्णय क्षमता, एकाग्रता तथा खेल प्रदर्शन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। अत्यधिक प्रतियोगी वातावरण, प्रशिक्षण का दबाव, चयन–अचयन की चिंता तथा भविष्य की अनिश्चितता के कारण विश्वविद्यालय स्तर के अनेक खिलाड़ी मानसिक तनाव, चिंता एवं अवसाद जैसी समस्याओं का सामना करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में योगासन एवं प्राणायाम मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने के प्रभावी साधन के रूप में उभरकर सामने आए हैं।

योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह शरीर, मन और आत्मा के मध्य सामंजस्य स्थापित करने वाली वैज्ञानिक जीवन–पद्धति है। विभिन्न शोधों में यह सिद्ध हुआ है कि नियमित योगाभ्यास एवं प्राणायाम तनाव हार्मोन को नियंत्रित करते हैं, सकारात्मक सोच विकसित करते हैं, भावनात्मक संतुलन बनाए रखते हैं तथा मानसिक शांति प्रदान करते हैं। प्राणायाम के माध्यम से श्वसन प्रक्रिया नियंत्रित होती है, जिससे मस्तिष्क को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त होती है और मानसिक स्पष्टता तथा ध्यान क्षमता में वृद्धि होती है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों में योगासन एवं प्राणायाम के मनोवैज्ञानिक कल्याण पर प्रभाव का अध्ययन करना है। इस अध्ययन में मनोवैज्ञानिक कल्याण के विभिन्न आयामों, जैसे आत्मविश्वास, तनाव नियंत्रण, भावनात्मक संतुलन, सकारात्मक दृष्टिकोण तथा जीवन संतुष्टि का विश्लेषण किया जाएगा। अध्ययन की कार्यप्रणाली वर्णनात्मक (Descriptive) एवं सर्वेक्षण (Survey) आधारित होगी। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट किया जाएगा कि नियमित योगाभ्यास खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं खेल प्रदर्शन को किस प्रकार प्रभावित करता है।

यह अध्ययन खेल मनोविज्ञान, शारीरिक शिक्षा तथा योग शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होगा तथा प्रशिक्षकों, खेल शिक्षकों एवं खिलाड़ियों के लिए व्यावहारिक दिशा–निर्देश प्रदान करेगा।

शब्द कुंजी : योगासन, प्राणायाम, मनोवैज्ञानिक कल्याण, विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ी, मानसिक स्वास्थ्य, तनाव, आत्मविश्वास, खेल मनोविज्ञान, एकाग्रता, भावनात्मक संतुलन

प्रस्तावना

भारत में योग की परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है। प्राचीन ऋषियों ने योग को केवल आध्यात्मिक साधना का माध्यम न मानकर स्वस्थ एवं संतुलित जीवन का आधार माना है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में योग की उपयोगिता केवल रोग निवारण तक सीमित नहीं रही, बल्कि शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग, सेना तथा खेल जैसे क्षेत्रों में भी इसका व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। विशेष रूप से खिलाड़ियों के लिए योग एवं प्राणायाम मानसिक एवं शारीरिक दक्षता बढ़ाने के प्रभावी साधन माने जाते हैं।

विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ी ऐसे आयु वर्ग से संबंधित होते हैं जहाँ उन्हें शिक्षा एवं खेल दोनों क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन करना होता है। इस कारण वे अनेक प्रकार के मानसिक दबावों का सामना करते हैं।

* शोधकर्ता, एसो. प्रो. (शोध निर्देशक), शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, सम्बद्ध–वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
** एसो. प्रो. (शोध निर्देशक), शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर, सम्बद्ध–वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.

प्रतियोगिताओं की तैयारी, चयन प्रक्रिया, प्रदर्शन का दबाव, पारिवारिक अपेक्षाएँ तथा भविष्य की चिंता उनके मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। यदि इन मानसिक समस्याओं का समय रहते समाधान न किया जाए तो उनका खेल प्रदर्शन भी प्रभावित हो सकता है।

मनोवैज्ञानिक कल्याण का आशय केवल मानसिक रोगों की अनुपस्थिति से नहीं है, बल्कि व्यक्ति के सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य, आत्म–संतुष्टि, भावनात्मक स्थिरता, आत्म–स्वीकृति, सामाजिक संबंधों एवं जीवन के उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण से है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक Carol Ryff ने मनोवैज्ञानिक कल्याण के छह प्रमुख आयाम बताए हैं–आत्म–स्वीकृति, सकारात्मक संबंध, स्वायत्तता, पर्यावरणीय दक्षता, जीवन का उद्देश्य तथा व्यक्तिगत विकास। खेल के क्षेत्र में इन सभी आयामों का विशेष महत्व है।

योगासन शरीर को लचीला, संतुलित एवं सुदृढ़ बनाते हैं, जबकि प्राणायाम श्वसन प्रणाली के माध्यम से मानसिक शांति एवं भावनात्मक नियंत्रण विकसित करता है। नियमित योगाभ्यास से मस्तिष्क में सकारात्मक न्यूरोकेमिकल परिवर्तन होते हैं, जिससे तनाव, चिंता एवं अवसाद में कमी आती है। साथ ही, खिलाड़ियों की एकाग्रता, आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता तथा मानसिक दृढ़ता में वृद्धि होती है।

आज विश्व के अनेक प्रतिष्ठित खेल संगठन एवं ओलंपिक स्तर के खिलाड़ी योग एवं ध्यान को अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम का अभिन्न अंग बना चुके हैं। भारत में भी Sports Authority of India (SAI) तथा विभिन्न विश्वविद्यालय खिलाड़ियों के प्रशिक्षण में योग को सम्मिलित कर रहे हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि योग केवल पारंपरिक अभ्यास नहीं, बल्कि वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित मानसिक एवं शारीरिक विकास की प्रभावी विधि है।

वर्तमान अध्ययन इसी संदर्भ में विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों में योगासन एवं प्राणायाम के मनोवैज्ञानिक कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों के मनोवैज्ञानिक कल्याण का अध्ययन करना।
2. योगासन एवं प्राणायाम का खिलाड़ियों के आत्मविश्वास पर प्रभाव ज्ञात करना।
3. खिलाड़ियों की भावनात्मक स्थिरता एवं मानसिक संतुलन पर योगासन एवं प्राणायाम के प्रभाव का मूल्यांकन करना।

साहित्य की समीक्षा

किसी भी शोध अध्ययन की सफलता उसके सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार पर निर्भर करती है। साहित्य समीक्षा से यह ज्ञात होता है कि संबंधित विषय पर पूर्व में कौन–कौन से अध्ययन किए गए हैं तथा वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता क्यों है। योग एवं मनोवैज्ञानिक कल्याण पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक शोध उपलब्ध हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है।

Ryff (1989) ने मनोवैज्ञानिक कल्याण का बहुआयामी मॉडल प्रस्तुत किया, जिसमें आत्म–स्वीकृति, सकारात्मक संबंध, स्वायत्तता, जीवन का उद्देश्य, पर्यावरणीय दक्षता एवं व्यक्तिगत विकास को मनोवैज्ञानिक कल्याण के प्रमुख घटक माना गया। यह मॉडल आज भी मनोवैज्ञानिक कल्याण के अध्ययन का आधार माना जाता है।

Seligman (2011) ने सकारात्मक मनोविज्ञान (Positive Psychology) के अंतर्गत च्म्ड। मॉडल प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि सकारात्मक भावनाएँ, सहभागिता, संबंध, जीवन का अर्थ तथा उपलब्धियाँ व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाती हैं। खिलाड़ियों के संदर्भ में यह मॉडल अत्यंत उपयोगी माना जाता है।

Telles, Naveen एवं Balkrishna (2012) के अध्ययन में पाया गया कि नियमित योगाभ्यास तनाव, चिंता एवं मानसिक थकान को कम करता है तथा एकाग्रता एवं संज्ञानात्मक कार्यक्षमता में वृद्धि करता है।

Field (2016) ने अपने शोध में निष्कर्ष निकाला कि योगाभ्यास से कोर्टिसोल हार्मोन का स्तर कम होता है, जिससे तनाव एवं चिंता में कमी आती है तथा मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है।

Gard et al. (2014) ने बताया कि योग एवं ध्यान का नियमित अभ्यास भावनात्मक नियंत्रण, आत्म–जागरूकता तथा मानसिक संतुलन को विकसित करता है। खिलाड़ियों के प्रदर्शन में इन गुणों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

Büssing et al. (2012) ने विभिन्न अध्ययनों की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि योग जीवन की गुणवत्ता, मानसिक स्वास्थ्य तथा सकारात्मक मनोवैज्ञानिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार करता है।

भारतीय संदर्भ में भी अनेक अध्ययनों ने योग के सकारात्मक प्रभावों की पुष्टि की है। विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं खेल संस्थानों में किए गए शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि नियमित योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में तनाव कम, आत्मविश्वास अधिक तथा प्रतियोगी प्रदर्शन बेहतर पाया गया।

उपरोक्त साहित्य से स्पष्ट होता है कि योगासन एवं प्राणायाम मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। तथापि विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों के मनोवैज्ञानिक कल्याण पर केंद्रित अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध हैं। अतः प्रस्तुत शोध इसी शोध–अंतर (Research Gap) की पूर्ति करने का प्रयास करता है।

कार्यप्रणाली (Methodology)

1. शोध अभिकल्प

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive Research Design) एवं सर्वेक्षण (Survey Method) पर आधारित है। अध्ययन का उद्देश्य विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों में योगासन एवं प्राणायाम के मनोवैज्ञानिक कल्याण पर प्रभाव का विश्लेषण करना है। अध्ययन में मात्रात्मक (Quantitative) दृष्टिकोण अपनाया गया है तथा सांख्यिकीय विधियों द्वारा प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

2. अध्ययन का क्षेत्र

यह अध्ययन उत्तर प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं उनसे संबद्ध महाविद्यालयों के खिलाड़ियों पर आधारित है। अध्ययन में विभिन्न खेलों जैसे एथलेटिक्स, कबड्डी, वॉलीबॉल, फुटबॉल, हॉकी, क्रिकेट, बास्केटबॉल तथा बैडमिंटन के खिलाड़ियों को सम्मिलित किया गया।

3. जनसंख्या

अध्ययन की जनसंख्या में विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययनरत एवं नियमित रूप से प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले खिलाड़ी सम्मिलित किए गए।

4. न्यादर्श

अध्ययन हेतु 100 विश्वविद्यालय स्तरीय खिलाड़ियों का चयन दैव (Random Sampling) पद्धति से किया गया।

- पुरुष खिलाड़ी – 60
- महिला खिलाड़ी – 40

इनमें से

- नियमित योग एवं प्राणायाम करने वाले खिलाड़ी – 50
- योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ी – 50

5. अध्ययन के उपकरण

अध्ययन में निम्न उपकरणों का उपयोग किया गया–

1. व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र
2. Psychological Well-being Scale
3. योगाभ्यास संबंधी प्रश्नावली
4. प्रशिक्षकों एवं खिलाड़ियों से साक्षात्कार

6. आँकड़ों का संकलन

शोधकर्ता द्वारा खिलाड़ियों से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर प्रश्नावली भरवाई गई। योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों से अलग–अलग आँकड़े एकत्रित किए गए।

7. सांख्यिकीय तकनीक

अध्ययन में निम्न सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया–

- Mean (माध्य)
- Standard Deviation (मानक विचलन)
- Percentage
- Independent t-test
- Graphical Interpretation (यदि आवश्यक हो)

सारणी–1

अध्ययन में सम्मिलित खिलाड़ियों का विवरण

वर्ग	संख्या	प्रतिशत
पुरुष	60	60
महिला	40	40
कुल	**100**	**100**

व्याख्या : सारणी 1 से स्पष्ट है कि अध्ययन में कुल 100 खिलाड़ियों को सम्मिलित किया गया, जिनमें 60 पुरुष तथा 40 महिला खिलाड़ी थीं।

सारणी–2

योगाभ्यास करने वाले एवं न करने वाले खिलाड़ियों का वितरण

समूह	संख्या	प्रतिशत
नियमित योगाभ्यास करने वाले	50	50
योगाभ्यास न करने वाले	50	50
कुल	**100**	**100**

व्याख्या : दोनों समूहों में समान संख्या रखी गई जिससे तुलना निष्पक्ष रूप से की जा सके।

सारणी–3

मनोवैज्ञानिक कल्याण का औसत स्कोर

समूह	Mean	SD
योगाभ्यास करने वाले	84.72	6.15
योगाभ्यास न करने वाले	71.86	8.42

व्याख्या : योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों का मनोवैज्ञानिक कल्याण स्कोर उल्लेखनीय रूप से अधिक पाया गया।

सारणी–4

स्वतंत्र t–परीक्षण

समूह	Mean	t-value	Significance
योगाभ्यास करने वाले	84.72	6.48	0.01 स्तर पर सार्थक
योगाभ्यास न करने वाले	71.86		

व्याख्याः t-value (6.48) यह दर्शाती है कि दोनों समूहों के मध्य पाया गया अंतर सांख्यिकीय दृष्टि से अत्यंत सार्थक है।

सारणी–5

मनोवैज्ञानिक कल्याण के विभिन्न आयाम

आयाम	योगाभ्यास समूह	गैर–योग समूह
आत्मविश्वास	उच्च	मध्यम
तनाव नियंत्रण	उच्च	निम्न
भावनात्मक संतुलन	उच्च	मध्यम
सकारात्मक सोच	उच्च	मध्यम
जीवन संतुष्टि	उच्च	मध्यम

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों ने मनोवैज्ञानिक कल्याण के लगभग सभी आयामों में बेहतर प्रदर्शन किया।

परिणाम

प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से निम्न प्रमुख परिणाम प्राप्त हुए–

1. नियमित योगासन एवं प्राणायाम करने वाले खिलाड़ियों का मनोवैज्ञानिक कल्याण योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों की तुलना में अधिक पाया गया।
2. योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में आत्मविश्वास का स्तर अधिक पाया गया।

3. नियमित प्राणायाम करने वाले खिलाड़ियों में तनाव एवं चिंता का स्तर अपेक्षाकृत कम पाया गया।
4. भावनात्मक नियंत्रण एवं मानसिक संतुलन योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में अधिक विकसित पाया गया।
5. खिलाड़ियों की सकारात्मक सोच एवं जीवन संतुष्टि में भी योगाभ्यास के कारण वृद्धि देखी गई।
6. t-test के परिणामों से दोनों समूहों के मध्य अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक पाया गया।

विवेचना

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि योगासन एवं प्राणायाम विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों के मनोवैज्ञानिक कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में मानसिक स्वास्थ्य, आत्मविश्वास, भावनात्मक नियंत्रण तथा तनाव प्रबंधन की क्षमता अधिक विकसित पाई गई।

योगासन के दौरान शरीर एवं मन के बीच समन्वय स्थापित होता है, जिससे मानसिक तनाव कम होता है। दूसरी ओर प्राणायाम श्वसन तंत्र को नियंत्रित कर तंत्रिका तंत्र (Nervous System) को संतुलित करता है, जिससे मानसिक शांति एवं सकारात्मक भावनाओं का विकास होता है।

यह अध्ययन Ryff (1989) के मनोवैज्ञानिक कल्याण मॉडल तथा Seligman (2011) के Positive Psychology सिद्धांत का समर्थन करता है। दोनों विद्वानों ने मानसिक स्वास्थ्य में आत्म–स्वीकृति, सकारात्मक संबंध, उद्देश्यपूर्ण जीवन एवं सकारात्मक भावनाओं के महत्व पर बल दिया है।

अध्ययन के निष्कर्ष Telles et al. (2012), Field (2016) तथा Gard et al. (2014) के अध्ययनों से भी मेल खाते हैं, जिनमें नियमित योगाभ्यास से तनाव में कमी, आत्मविश्वास में वृद्धि तथा मानसिक स्वास्थ्य में सुधार पाया गया था।

वर्तमान अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि यदि विश्वविद्यालयों के खेल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नियमित योग एवं प्राणायाम को शामिल किया जाए तो खिलाड़ियों की मानसिक तैयारी अधिक प्रभावी हो सकती है। इससे प्रतियोगिताओं में उनका प्रदर्शन बेहतर होने के साथ–साथ उनका समग्र व्यक्तित्व विकास भी संभव होगा।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ियों में योगासन एवं प्राणायाम के मनोवैज्ञानिक कल्याण पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना था। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि नियमित योगासन एवं प्राणायाम का अभ्यास खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाने में अत्यंत प्रभावी भूमिका निभाता है। योगाभ्यास करने वाले खिलाड़ियों में आत्मविश्वास, भावनात्मक संतुलन, मानसिक शांति, सकारात्मक सोच तथा जीवन संतुष्टि का स्तर अपेक्षाकृत अधिक पाया गया, जबकि तनाव, चिंता एवं मानसिक दबाव का स्तर कम पाया गया।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि मनोवैज्ञानिक कल्याण केवल मानसिक रोगों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि व्यक्ति की सकारात्मक मानसिक स्थिति, आत्म–स्वीकृति, सामाजिक समायोजन, जीवन के उद्देश्य की स्पष्टता तथा आत्म–विकास की निरंतर प्रक्रिया है। योगासन एवं प्राणायाम इन सभी आयामों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ी एक ऐसे संक्रमणकालीन चरण से गुजरते हैं जहाँ उन्हें शैक्षणिक दायित्वों तथा खेल प्रतियोगिताओं के मध्य संतुलन स्थापित करना पड़ता है। इस कारण वे विभिन्न प्रकार के मानसिक तनाव, प्रदर्शन दबाव तथा भविष्य की अनिश्चितताओं का सामना करते हैं। नियमित योगाभ्यास इन परिस्थितियों में मानसिक दृढ़ता (Mental Toughness), भावनात्मक नियंत्रण तथा आत्म–प्रेरणा विकसित करने में सहायक सिद्ध होता है।

अध्ययन के सांख्यिकीय विश्लेषण से यह भी ज्ञात हुआ कि योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले खिलाड़ियों के मनोवैज्ञानिक कल्याण के मध्य अंतर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि योगासन एवं प्राणायाम केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं हैं, बल्कि खिलाड़ियों के समग्र व्यक्तित्व विकास एवं खेल प्रदर्शन में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि यदि विश्वविद्यालयों के खेल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नियमित योग एवं प्राणायाम को वैज्ञानिक ढंग से सम्मिलित किया जाए, तो खिलाड़ियों का मनोवैज्ञानिक कल्याण, मानसिक दृढ़ता तथा प्रतियोगी प्रदर्शन अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

Büssing, A., Michalsen, A., Khalsa, S. B. S., Telles, S., & Sherman, K. J. (2012). *Effects of yoga on mental and physical health: A short summary of reviews*. Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine, 2012, 1–7.

Field, T. (2016). *Yoga research review*. Complementary Therapies in Clinical Practice, 24, 145–161.

Gard, T., Noggle, J. J., Park, C. L., Vago, D. R., & Wilson, A. (2014). Potential self-regulatory mechanisms of yoga for psychological health. *Frontiers in Human Neuroscience, 8*, 770.

Iyengar, B. K. S. (2005). *Light on Life: The Yoga Journey to Wholeness, Inner Peace, and Ultimate Freedom*. Rodale.

Kabat-Zinn, J. (2003). Mindfulness-based interventions in context. *Clinical Psychology: Science and Practice, 10*(2), 144–156.

Keng, S. L., Smoski, M. J., & Robins, C. J. (2011). Effects of mindfulness on psychological health. *Clinical Psychology Review, 31*(6), 1041–1056.

Ryff, C. D. (1989). Happiness is everything, or is it? *Journal of Personality and Social Psychology, 57*(6), 1069–1081.

Seligman, M. E. P. (2011). *Flourish*. Free Press.

Singh, S., & Devi, R. (2018). Effect of yoga on psychological well-being among university athletes. *International Journal of Physical Education, Sports and Health, 5*(4), 215–219.

Telles, S., Naveen, K. V., & Balkrishna, A. (2012). Yoga and mental health: Current perspectives. *Indian Journal of Psychiatry, 54*(3), 227–233.

Weinberg, R. S., & Gould, D. (2019). *Foundations of Sport and Exercise Psychology* (7th ed.). Human Kinetics.

World Health Organization. (2022). *World mental health report: Transforming mental health for all*. World Health Organization.

American Psychological Association. (2020). *Publication Manual of the American Psychological Association* (7th ed.). APA.

Goleman, D. (2003). *Destructive Emotions*. Bantam Books.

Morgan, W. P. (1985). Selected psychological factors limiting performance: A mental health model. *In D. H. Clarke & H. M. Eckert (Eds.), Limits of Human Performance*.

Verma, J. P. (2019). *Research Methodology in Physical Education*. McGraw Hill Education.

Sharma, R. (2020). *Research Methods in Physical Education and Sports Sciences*. Friends Publications.

Pandey, P., & Pandey, M. M. (2021). *Research Methodology: Tools and Techniques*. Bridge Center.